जिनधर्म प्रवेशिका

(मराठी)

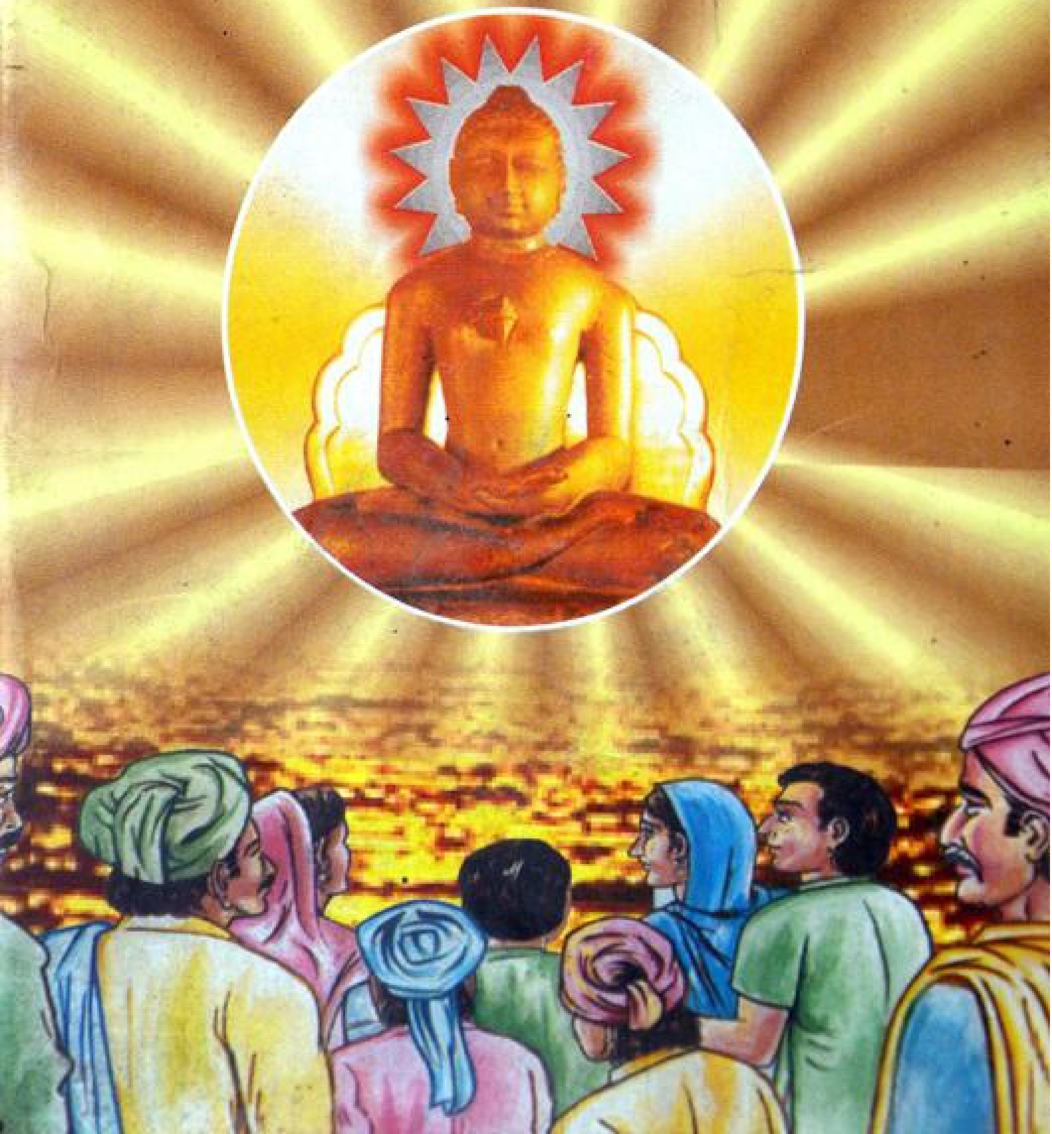

जिनधर्म-प्रवेशिका

लेखक एवं सम्पादक :
ब्र. यशपाल जैन
एम.ए., जयपुर

पद्यानुवादक :
बाबूलाल बाँझल
एम.ए., बी.टी. गुना

प्रकाशक :
पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट
ए-4, बापूनगर, जयपुर - 302015
फोन : 0141-2707458, 2705581
E-mail : ptstjaipur@yahoo.com

हिन्दी :

प्रथम नौ संस्करण (अप्रैल, 1994 से अद्यतन)	:	28 हजार
दसम् संस्करण (8 जून 2008) श्रुत पंचमी	:	2 हजार
योग	:	**30 हजार**
मराठी :		
प्रथम पाँच संस्करण	:	10 हजार
कन्नड़ :		
प्रथम दो संस्करण	:	2 हजार
महायोग	:	**42 हजार**

मूल्य : **पाँच रुपए**

मुद्रक :
प्रिन्ट ''ओ'' लैण्ड
बाईस गोदाम,
जयपुर

विषयानुक्रमणिका

मंगलाचरण	1
विश्व	02-05
द्रव्य	06-13
गुण	14-19
पर्याय	20-27
अस्तित्वादि छह सामान्यगुण	28-43
सात तत्त्व	44-49
अहिंसा	50-51
हिंसा के भेद	52-53
देव-शास्त्र-गुरु	54-55
परिशिष्ट	56-60

प्रकाशकीय

जिनधर्म-प्रवेशिका का यह नया गद्य व पद्यमय संस्करण प्रकाशित करते हुए हमें हार्दिक प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। विश्व, द्रव्य, गुण, पर्याय, छह सामान्य गुण, सात तत्त्व, अहिंसा आदि की विस्तृत परिभाषाएँ एवं उनको जानने से होनेवाले लाभ की जानकारी गद्य में तो आपको प्राप्त होगी ही, लेकिन अब आप पद्य में भी इसका लाभ उठा सकेंगे।

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट एवं उसकी अन्य सहयोगी संस्थाओं के माध्यम से तीन शिविरों का आयोजन बृहद् स्तर पर प्रतिवर्ष होता है, जिससे समाज लाभान्वित होती है। स्थान-स्थान पर आठ दिवसीय शिविरों की भी धूम मची रहती है। इन सभी शिविरों के पाठ्यक्रम में लघु जैन सिद्धान्त प्रवेशिका को रखा गया है।

लघु जैन सिद्धान्त प्रवेशिका को आधार मानकर ही ब्र. यशपालजी ने अपनी शैली में जिनधर्म-प्रवेशिका तैयार की है, जिसके हिन्दी में नौ संस्करण, 28 हजार की संख्या में प्रकाशित हो चुके हैं। इसके साथ ही मराठी के तीन संस्करण 10 हजार व कन्नड़ के दो संस्करण 2 हजार की संख्या में प्रकाशित हो चुके हैं, जिन्हें समाज ने भरपूर सराहा है। पुस्तक की निरन्तर माँग को देखते हुए इसका यह दसम् संस्करण 2 हजार की संख्या में प्रकाशित किया जा रहा है।

गद्य के साथ पद्यमय होना, इस नवीन संस्करण की विशेषता है। श्री बाबूलालजी बाँझल गुना ने इसे पद्यमय बनाकर और अधिक रोचक बनाने का प्रयत्न किया है, जिसके लिए हम उनके हृदय से आभारी हैं।

ब्र. यशपालजी जिन्होंने सरल भाषा में इसे तैयार कर जन-जन के लिए उपयोगी बनाया है, वे तो बधाई के पात्र हैं ही, साथ ही प्रकाशन विभाग के प्रभारी श्री अखिल बंसल भी बधाई के पात्र हैं, जिन्होंने इसके कलेवर को आकर्षक बनाकर प्रकाशन में सहयोग दिया है।

आप सभी इस पुस्तक के माध्यम से जैनधर्म का मर्म समझकर आत्मकल्याण का मार्ग प्रशस्त करें, इसी भावना के साथ –

– डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल
महामंत्री
पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर

मनोगत

वर्षों से जैन तत्त्वज्ञान के अध्ययन-अध्यापन का महान पुण्ययोग मुझे अपने जीवन में मिलता ही रहा है। नये गाँव में जाने पर अथवा पुराने स्थान पर भी नये श्रोताओं को जैन सिद्धान्त का मूल विषय समझाने के विकल्प से मैं जिनधर्म-प्रवेशिका ही पढ़ाता हूँ।

अनेक वर्षों से मन में यह भावना रही कि विश्व, द्रव्य, गुण, पर्याय, छह सामान्य गुण, सात तत्त्व, अहिंसा आदि विषयों की परिभाषाएँ एवं उनको जानने से होने वाले धर्म सम्बन्धी लाभ यदि पद्य में कोई करेगा तो लोग छहढाला जैसे जिनधर्म-प्रवेशिका को भी कण्ठगत करेंगे । मैंने अपनी यह भावना श्री बाबूलालजी बाँझल को बतायी। कुछ घंटों के बाद उन्होंने कुछ विषय दोहे में पद्यमय बनाकर सुनाया। मैंने संतोष व्यक्त किया। तदनन्तर थोड़े दिनों बाद ही उन्होंने पूर्ण जिनधर्म-प्रवेशिका को अतिशय आत्मीयता एवं उत्साह के साथ पद्यमय करके मुझे दे दिया ।

सन १९९७ के दशलक्षण पर्व के समय मैं पिड़ावा (झालावाड़-राजस्थान) में था। पिड़ावा में ही पद्यानुवाद को अंतिम रूप दिया गया। इस कारण अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन शाखा- पिड़ावा ने पद्यमय जिनधर्म-प्रवेशिका स्वयमेव उत्साह से १२ अक्टूबर १९९७ में सर्वप्रथम प्रकाशित की। इस संस्करण में प्रत्येक परिभाषा के साथ नीचे तल टीप में पाठकों की श्रद्धा दृढ बनाने के अभिप्राय से मूल शास्त्र का आधार दिया है और देव-शास्त्र-गुरु सम्बन्धी कुछ प्रश्नोत्तर भी जोड़ दिये हैं। शेष भाग पूर्व संस्करण के अनुसार ही है।

गद्य-विभाग से पद्य का सुमेल पाठकों को सुलभ रीति से समझ में आवे; इस विचार से गद्यमय प्रश्न और उत्तर के सामने ही पद्यमय उत्तर (प्रश्न का पद्यानुवाद नहीं है।) छपवाया है । गद्य में जो प्रश्न का क्रमांक है वही उत्तर का भी क्रमांक है । इस कारण पाठकों को विषय आत्मसात करने में सहज सुविधा होगी। गद्य का अंश जहाँ एक दोहे में नहीं आ पाया, वहाँ अधिक दोहों का भी उपयोग किया है।

पण्डित रमेशचन्दजी शास्त्री, जैन कम्प्यूटर्स जयपुर वालों ने स्वयं रुचि लेते हुए इस कृति को सुन्दर बनाने में अपना सम्पूर्ण सहयोग दिया। अत: उन्हें अनेकशः धन्यवाद ।

सुधी पाठक एवं विशिष्ट विद्वानों से नम्र निवेदन है कि वे इस संस्करण के सम्बन्ध में अपने सुझाव अवश्य लिखें, तदनुसार आगामी संस्करण में उनका यथासम्भव उपयोग कर सकें।

श्री टोडरमल स्मारक भवन ***ब्र० यशपाल जैन***
ए-४, बापूनगर, जयपुर (राजस्थान) ३०२०१५

प्रस्तुत संस्करण की कीमत कम करने वाले दातारों की सूची

1. श्री सुखानन्दजी जैन, ग्वालियर	301.00
2. श्रीमती मंगल जैन ध.प. रमेशचन्दजी बगड़ा, कोटा	251.00
3. श्री प्रकाशचन्द जयकुमारजी जैन, ग्वालियर	251.00
4. श्री महावीरप्रसादजी ठाकुरिया, उदयपुर	251.00
5. श्री मनोज जैन, अभाना	251.00
6. श्रीमती सुधा बाँझल, गुना	251.00
7. श्रीमती निर्मला जैन, जयपुर	201.00
8. श्रीमती कलावती पाण्डे, सुसनेर	201.00
9. श्रीमती सन्तोष जैन, जयपुर	201.00
10. श्री शरदकुमारजी विभावत, विनौता	201.00
11. श्री रिषभचन्दजी जैन, भोपाल	200.00
12. श्री दिग. जैन मुमुक्षु मण्डल, खिमलासा	200.00
13. श्री हितेशकुमारजी पाटनी, झालरापाटन	200.00
14. श्री प्रकाशचन्दजी विभावत, विनौता	101.00
कुल राशि :	**3,061.00**

जिनेन्द्रकथित शास्त्र-अभ्यास से लाभ

(रत्नकरण्ड श्रावकाचार : अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग भावना)

१. कषायों का अभाव हो जाता है।
२. माया, मिथ्यात्व, निदान —इन तीन शल्यों का ज्ञानाभ्यास से नाश होता है।
३ ज्ञान के अभ्यास से ही मन स्थिर होता है।
४. अनेक प्रकार के दु:खदायक विकल्प नष्ट हो जाते हैं।
५. शास्त्राभ्यास से ही धर्मध्यान व शुक्लध्यान में अचल होकर बैठा जाता है।
६. ज्ञानाभ्यास से ही जीव व्रत-संयम से चलायमान नहीं होते।
७. जिनेन्द्र का शासन प्रवर्तता है।
८. अशुभ कर्मों का नाश होता है।
९. जिनधर्म की प्रभावना होती है।
१०. ज्ञान के अभ्यास से ही लोगों के हृदय में पूर्व का संचित कर रखा हुआ पापरूप ऋण नष्ट हो जाता है।
११. अज्ञानी जिस कर्म को घोर तप करके कोटि पूर्व वर्षों में खिपाता है, उस कर्म को ज्ञानी अंतर्मुहूर्त में ही खिपा देता है।
१२. ज्ञान के प्रभाव से ही जीव समस्त विषयों की वांछा से रहित होकर संतोष धारण करते हैं।
१३. शास्त्राभ्यास से ही उत्तम क्षमादि गुण प्रगट होते हैं।
१४. भक्ष्य-अभक्ष्य का, योग्य-अयोग्य का, त्यागने-ग्रहण करने योग्य का विचार होता है।
१५. ज्ञान बिना परमार्थ और व्यवहार दोनों नष्ट होते हैं।
१६. ज्ञान के समान कोई धन नहीं है और ज्ञान-दान समान कोई अन्य दान नहीं है।
१७. दु:खित जीव को सदा ज्ञान ही शरण/आधार है।
१८. ज्ञान ही स्वदेश में एवं परदेश में सदा आदर कराने वाला परम धन है।
१९. ज्ञान धन को कोई चोर चुरा नहीं सकता, लूटने वाला लूट नहीं सकता, खोंसनेवाला खोंस नहीं सकता।
२०. ज्ञान किसी को देने से घटता नहीं है, जो ज्ञान-दान देता है; उसका ज्ञान बढ़ता जाता है।
२१. ज्ञान से ही सम्यक्‌दर्शन उत्पन्न होता है।
२२. ज्ञान से ही मोक्ष प्रगट होता है।

जिनधर्म-प्रवेशिका

मंगलाचरण

देव-शास्त्र-गुरु को नमूँ; नमूँ दिगम्बर धर्म।
वीतरागता हो प्रगट; सहज मिले शिव शर्म।।

पंच परम पद विश्व में; आगम के अनुसार।
उनकी श्रद्धा भक्ति से; होउं भवोदधि पार।।

शासन वीर जिनेन्द्र का; वर्त रहा है आज।
उनके चरणों में नमन; सहज सफल सब काज।।

घाति कर्म सब नाश कर; अनन्त चतुष्टय पाय।
सप्त धातु से रहित तन; औदारिक कहलाय।।

दोष अठारह हैं नहीं; शुद्ध ज्ञान-भण्डार।
हैं अरहन्त परमेष्ठी; ध्यान धरो गुण-धार।।

अष्ट कर्म का नाश कर; लिए अष्ट गुण-धार।
ज्ञाता-दृष्टा लोक के; निराकार अविकार।।

लोक-शिखर पर वास है; ज्ञानरूप घन पिण्ड।
सिद्ध सदा ही ध्याइये; शिव सुख मिले अखण्ड।।

कुन्दकुन्द को नित नमन; दिया 'समय' का सार।
भूल सकेगा कौन कब; उनका यह उपकार?

यह 'जिनधर्म प्रवेशिका'; जिन शासन का द्वार।
कथन करे जिनधर्म का; आगम के अनुसार।।

विश्व

१. **प्रश्न** : विश्व (लोक) किसे कहते हैं?
उत्तर : छह द्रव्यों के समूह को विश्व (लोक) कहते हैं[१]।

२. **प्रश्न** : विश्व के अन्य कौन-कौन से नाम हैं?
उत्तर : विश्व के जगत, लोक, दुनिया, ब्रह्माण्ड इत्यादि अन्य नाम हैं।

३. **प्रश्न** : विश्व में कितने द्रव्य रहते हैं?
उत्तर : विश्व में जाति की अपेक्षा छह और संख्या की अपेक्षा अनन्तानन्त द्रव्य रहते हैं।[२]

४. **प्रश्न** : विश्व में जाति की अपेक्षा से छह द्रव्य कौन-कौन से हैं?
उत्तर : विश्व में जाति की अपेक्षा से जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये छह द्रव्य हैं।[३]

५. **प्रश्न** : जीवादि प्रत्येक द्रव्य कितने-कितने हैं?
उत्तर : जीवद्रव्य अनन्त हैं; पुद्गलद्रव्य अनन्तानन्त हैं, धर्म, अधर्म, आकाश द्रव्य एक-एक हैं एवं कालद्रव्य असंख्यात हैं।[४]

६. **प्रश्न** : वे जीवादि द्रव्य विश्व में किस प्रकार रहते हैं?
उत्तर : वे जीवादि द्रव्य विश्व में दूध-पानी की तरह एकक्षेत्रावगाही रहते हैं; फिर भी अपने-अपने स्वभाव को नहीं छोड़ते[५], इसलिए स्वतंत्र ही रहते हैं।

७. **प्रश्न** : इस विश्व को किसने बनाया है?
उत्तर : इस विश्व को किसी ने नहीं बनाया है[६]; क्योंकि इसमें रहने वाले सभी द्रव्य अनादि-अनन्त और स्वयंसिद्ध हैं।

---

१. बारसाणुवेक्खा, गाथा-३८। २. कार्तिकेयानुप्रेक्षा, गाथा-२२४।
३. नियमसार, गाथा-६। ४. गोम्मटसार जी.कां., गाथा-५८८ व ५८६।
५. पंचास्तिकाय, गाथा-७। ६. कार्तिकेयानुप्रेक्षा, गाथा-११५।

विश्व

१.

जो समूह षट द्रव्य का; वही विश्व पहिचान।
आदि-अन्त उसका नहीं; है अनादि लो जान।।१।।

२.

विश्व अनेकों नाममय; जग, दुनिया अरु लोक।
ब्रह्म लोक, ब्रह्माण्ड सब; समता भाव विलोक।।२।।

३.

जाति अपेक्षा द्रव्य छह; संख्यानन्तानन्त।
न्यूनाधिक होते नहीं; रहते सदा अनन्त।।३।।

४.

जाति अपेक्षा द्रव्य छह; जिय, पुद्गल, अरु धर्म।
अम्बर, काल, अधर्म का; अपना अपना कर्म।।४।।

५.

जीव अनन्त हैं विश्व में; पुद्गल अनन्तानन्त।
अम्बर, धर्म, अधर्म इक; काल असंख्य समन्त।।५।।

६.

द्रव्य विश्व में रह रहे; एक-क्षेत्र अवगाह।
सब स्वतंत्र निज भावमय; क्षीर-नीर अवगाह।।६।।

७.

स्वयं-सिद्ध है विश्व यह; सदा अनादि अनन्त।
नहीं बनाया किसी ने; छहों द्रव्य जयवन्त।।७।।

आकाश द्रव्य का क्षेत्र अनन्त है, उसके बहु मध्य में स्थित लोक है, वह किसी के द्वारा बनाया हुआ नहीं है तथा किसी हरि-हरादि द्वारा धारण किया हुआ भी नहीं है।

– कार्तिकेयानुप्रेक्षा गाथा – ११५

८. प्रश्न : विश्व को जानने से हमें क्या-क्या लाभ होते हैं?
उत्तर : विश्व को जानने से हमें अनेक लाभ होते हैं—

१. यह विश्व स्वयंसिद्ध होने से अनादि-अनन्त है। इसलिए इस विश्व के नाश होने का भय मिट जाता है।

२. इस जगत का कर्ता-धर्ता-हर्ता ईश्वर है — ऐसी भ्रान्ति निकल जाती है।[१]

३. सच्चे वीतरागी-सर्वज्ञ देव का पक्का निर्णय होता है।[२]

४. भगवान सम्बन्धी सच्ची भक्ति प्रगट होती है।

५. धर्म अर्थात् वीतरागता एवं शुद्धि, मोक्षमार्ग प्रगट करने का यथार्थ उपाय अर्थात् पुरुषार्थ ख्याल में आता है।

६. लौकिक एवं पारलौकिक जीवन में परावलम्बन का नाश होकर स्वावलम्बन प्रगट होता है।

७. भगवान विषयक सतत सलता हुआ व्यर्थ भय नष्ट हो जाता है।

८. भगवान से भोगों की भीख मांगने की भिखारी-वृत्ति का अभाव हो जाता है।

९. जिनेन्द्र कथित धर्म की श्रद्धा विशेष दृढ़ होती है और धर्माभासों का बहुमान नहीं रहता।

१०. अपना अल्प (मति-श्रुत) ज्ञान भी केवलज्ञान के समान सत्य वस्तु-स्वरूप को यथार्थ जानने लगता है।

११. इस विशाल जगत में मैं कहाँ हूँ; इसका भी पता लग जाता है।

> इस लोक को किसी ने बनाया नहीं है, किसी ने टिका नहीं रखा है, कोई नाश नहीं कर सकता; छह प्रकार के द्रव्यस्वरूप है — छह द्रव्यों से परिपूर्ण है। **ऐसे लोक में वीतरागी समता बिना सदैव भटकता हुआ जीव दुख सहन करता है। *–छहढाला पांचवी ढाल, छन्द १२ का अर्थ***

---

१. कार्तिकेयानुप्रेक्षा, गाथा-११५।
२. देवागम स्तोत्र, श्लोक-६।

विश्व को जानने से लाभ

८.

१. स्वयं-सिद्ध है विश्व यह; सदा अनादि-अनन्त।
कभी नाश इसका नहीं; भय का होता अन्त।।८।।

२. कर्ता-धर्ता विश्व का; हर्ता कभी न कोय।
ईश्वर के कर्तृत्व का; दूर सभी भ्रम होय।।९।।

३. देव-शास्त्र-गुरु की हमें; हो सच्ची पहिचान।
सच्ची श्रद्धा हो तभी; आ जाये बहुमान।।१०।।

४. देव-रूप सत जानकर; सच्ची हो पहिचान।
सच्ची भक्ति प्रगट हो; हो सच्चा श्रद्धान।।११।।

५. धर्म प्रगट कैसे करें?; क्या उपाय सत्यार्थ?
मिल जाता है पथ स्वयं; जागृत कर पुरुषार्थ।।१२।।

६. पर-परिणति मिटती सभी; परालम्ब का नाश।
स्वावलम्बन होता प्रगट; होता निज विश्वास।।१३।।

७. भला-बुरा जो कर सके; नहीं कोई भगवान।
फिर उसका भय क्यों रहे? बनता श्रद्धावान।।१४।।

८. नहीं देता भगवान कुछ; क्यों भोगों की भीख?
भिक्षुक-वृत्ति मिट गई; मिली नवोदय सीख।।१५।।

९. कथन जिनागम का सुना; हुआ सत्य श्रद्धान।
धर्माभासों का प्रभो; नहीं रहा बहुमान।।१६।।

१०. वर्तमान का ज्ञान भी; जो है मति-श्रुतरूप।
केवलज्ञानी-सा वही; जाने वस्तु-स्वरूप।।१७।।

११. इस विस्तृत संसार में; मेरा क्या अस्तित्व।
परिचय मिलता सहज ही; जैसा है व्यक्तित्व।।१८।।

किनहू न करौ न धरै को, षडद्रव्यमयी न हरै को।
सो लोकमाही बिन समता, दुख सहै जीव नित भ्रमता।।

—छहढाला पांचवी ढाल, छन्द १२

द्रव्य

९. **प्रश्न** : द्रव्य किसे कहते हैं?

उत्तर : गुणों के समूह को द्रव्य कहते हैं।[1]

१०. **प्रश्न** : द्रव्य के और क्या-क्या नाम हैं?

उत्तर : द्रव्य को वस्तु, तत्त्व, सत्, सत्ता, अर्थ, पदार्थ, अन्वय आदि भी कहते हैं।

११. **प्रश्न** : द्रव्य का कर्ता कौन है?

उत्तर : प्रत्येक द्रव्य अनादि-अनन्त, स्वत:सिद्ध[2] है; अत: द्रव्य का कोई कर्ता-धर्ता-हर्ता नहीं है।

१२. **प्रश्न** : द्रव्य में गुणों को किसने एकत्रित किया है?

उत्तर : द्रव्य में गुणों को किसी ने भी एकत्रित नहीं किया है। द्रव्य स्वयमेव ही अनादिकाल से अनन्त गुणमय है और अनन्त काल तक अनन्त गुणमय ही रहेगा। अत: द्रव्य भी विश्वके समान स्वयंभू अर्थात् स्वयंसिद्ध एवं स्वतंत्र है।

१३. **प्रश्न** : एक ही गुण को द्रव्य कह सकते हैं या नहीं?

उत्तर : एक ही गुण को द्रव्य नहीं कह सकते; क्योंकि एक द्रव्य में अनन्त गुण होने से एक द्रव्य में ही अनन्त द्रव्य मानने का प्रसंग आ जायेगा।

१४. **प्रश्न** : एक द्रव्य में कितने गुण होते हैं?

उत्तर : एक द्रव्य में अनन्त गुण होते हैं।[3]

१५. **प्रश्न** : गुणों की अनन्तता का स्वरूप क्या है?

उत्तर : इस विश्व में जीवद्रव्य अनन्त हैं, उनसे अनन्त गुणे अधिक पुद्गलद्रव्य हैं, उनसे अनन्त गुणे अधिक तीन काल के समय हैं, उनसे अनन्त गुणे अधिक आकाश के प्रदेश हैं और उनसे भी अनन्त गुणे अधिक एक द्रव्य में गुण होते/रहते हैं।

---

१. पंचास्तिकाय, गाथा-४४ की आचार्य अमृतचन्द्रकृत टीका समयव्याख्या एवं आचार्य जयसेनकृत टीका तात्पर्यवृत्ति। सर्वार्थसिद्धि, अ.५ सूत्र.२ की टीका

२. पंचाध्यायी, प्रथम खण्ड श्लोक-८।

३. पंचाध्यायी, द्वितीय खण्ड श्लोक-१०११।

द्रव्य

९.

गुण-पर्यायों से सहित; वस्तु कहावे द्रव्य।
जो ऐसी श्रद्धा करे; समझ सके वह द्रव्य॥१९॥

१०.

द्रव्य के नाम अनेक हैं; वस्तु, तत्त्व, सत जान।
सत्ता, अर्थ, पदार्थ भी; अन्वयादि पहिचान॥२०॥

११.

अनादि-अनन्त हैं द्रव्य सब; स्वत:सिद्ध गुणवान।
निर्माता कोई नहीं; उनका निश्चय मान॥२१॥

१२.

हैं अनन्त गुण द्रव्य में; वह अनादि से जान।
विश्व सरीखा द्रव्य भी; स्वयं-सिद्ध पहिचान॥२२॥

१३.

एकाकी गुण द्रव्य नहीं; द्रव्य गुणों की खान।
द्रव्य गुणों का पिण्ड ही; कहा स्वयं भगवान॥२३॥

१४.

गुण अनन्त इक द्रव्य में; रहें सदा गुणरूप।
उनकी महिमा को कहूँ; आगम के अनुरूप॥२४॥

१५.

जीव अनन्ते विश्व में; पुद्गल अनंतानंत।
तीन काल के समय हैं; उनसे गुणे अनन्त॥२५॥

अनन्त गुणे उनसे अधिक; अम्बर के प्रदेश।
उनसे अनन्ते गुण कहे; एक द्रव्य निर्देश॥२६॥

पर्याय बिन ना द्रव्य हो ना द्रव्य बिन पर्याय ही।
दोनों अनन्य रहें सदा- यह बात श्रमणों ने कही॥
—पंचास्तिकायसंग्रह, गाथा, १२

१६. **प्रश्न** : हम कौन से द्रव्य हैं?

उत्तर : हमारा आत्मा जीवद्रव्य है; क्योंकि हम ज्ञानमय हैं और हमारा शरीर पुद्गलद्रव्य है।

१७. **प्रश्न** : द्रव्य की अन्य परिभाषायें कौन-कौनसी हैं?

उत्तर : तत्त्वार्थसूत्र शास्त्र में सत् को द्रव्य का लक्षण कहा है एवं जो उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य युक्त है; उसे सत् कहा है। इसीप्रकार गुण-पर्यायवान को भी द्रव्य कहा है।[१]

१८. **प्रश्न** : उत्पाद किसे कहते हैं?

उत्तर : द्रव्य में प्रति समय होनेवाली नवीन पर्याय की उत्पत्ति को उत्पाद कहते हैं।[२]

१९. **प्रश्न** : व्यय किसे कहते हैं?

उत्तर : द्रव्य में पूर्व पर्याय के नाश को व्यय कहते हैं।[३]

२०. **प्रश्न** : ध्रौव्य किसे कहते हैं?

उत्तर : प्रत्यभिज्ञान के कारणभूत द्रव्य की किसी अवस्था की नित्यता को ध्रौव्य कहते हैं । अर्थात् उत्पाद-व्ययरूप पर्यायों में निरन्तर विद्यमान रहने वाले द्रव्य के नित्य अंश को ध्रौव्य कहते हैं।[४]

२१. **प्रश्न** : जीवद्रव्य किसे कहते हैं?

उत्तर : जिसमें चेतना अर्थात् ज्ञान-दर्शनरूप शक्ति है; उसे जीवद्रव्य कहते हैं।[५]

२२. **प्रश्न** : पुद्गलद्रव्य किसे कहते हैं?

उत्तर : जिसमें स्पर्श, रस, गंध और वर्ण - ये विशेष गुण होते हैं; उसे पुद्गलद्रव्य कहते हैं।[६]

२३. **प्रश्न** : पुद्गल के कितने भेद हैं?

उत्तर : पुद्गल के दो भेद हैं— १. परमाणु, २. स्कन्ध।[७]

---

१. तत्त्वार्थसूत्र, अ. ५, सूत्र-२९,३०,३८। २. प्रवचनसार, गाथा-६५ आचार्य अमृतचन्द्रकृत टीका तत्त्वप्रदीपिका। तत्त्वार्थसूत्र, अ. ५, सूत्र-४२। ३. प्रवचनसार, गाथा-६५ आचार्य अमृतचन्द्रकृत टीका तत्त्वप्रदीपिका। सर्वार्थसिद्धि, अ. ५, सूत्र. ३० की टीका । ४. प्रवचनसार, गाथा-६५ आचार्य अमृतचन्द्रकृत टीका तत्त्वप्रदीपिका। तत्त्वार्थसूत्र, अ. ५,सूत्र-३१। ५. पंचास्तिकाय, गाथा-४०। ६. तत्त्वार्थसूत्र, अ. ५, सूत्र-२३। ७. तत्त्वार्थसूत्र, अ. ५, सूत्र-२५।

१६.

आत्म द्रव्य ही जीव है; तन को पुद्गल जान।
आपा-पर के भेद को; भाव सहित पहिचान।।२७।।

१७.

"सूत्र" ग्रंथ में सत कहा; सत की कर पहिचान।
व्यय, उत्पादी, ध्रौव्य सत; गुण पर्यायोंवान।।२८।।

१८.

समय समय पर द्रव्य में; नयी नयी पर्याय।
प्रगटे सो उत्पाद है; वही नयी पर्याय।।२९।।

१९.

पूर्व हुई पर्याय का; हो जाता है नाश।
उसको व्यय सब ही कहें; आगम के प्रकाश।।३०।।

२०.

कारण प्रत्यभिज्ञान के; कही नित्यता ध्रौव्य।
व्यय-उत्पादों में रहे; नित्य अंश ही ध्रौव्य।।३१।।

२१.

चेतनता जिसमें रहें; दर्श-ज्ञान के रूप।
जीवद्रव्य उसको कहा; आगम के अनुरूप।।३२।।

२२.

रस, गंध, वर्ण, स्पर्श युत; गुण विशेष हैं जान।
पुद्गल द्रव्य उसको कहें; आगम से प्रमाण।।३३।।

२३.

पुद्गल के दो भेद हैं; परमाणु अरु स्कन्ध।
परमाणु अति सूक्ष्म है; थूलरूप है स्कन्ध।।३४।।

> **जीव जुदा पुद्गल जुदा,**
> **यही तत्त्व का सार है।**
> **बाकी जो कछु और है,**
> **याही को विस्तार।।** — *इष्टोपदेश, श्लोक-५०*

२४. **प्रश्न** : परमाणु किसे कहते हैं?

उत्तर : जिसका दूसरा टुकड़ा अर्थात् विभाग नहीं हो सकता, ऐसे सबसे सूक्ष्म/छोटे पुद्गल को परमाणु कहते हैं।[१]

२५. **प्रश्न** : स्कन्ध किसे कहते हैं?

उत्तर : दो या दो से अधिक परमाणुओं के बन्ध को स्कन्ध कहते हैं।[२]

२६. **प्रश्न** : धर्मद्रव्य किसे कहते हैं?

उत्तर : स्वयं गमन करते हुए जीव और पुद्गल को गमन करने में जो द्रव्य निमित्त हो; उसे धर्मद्रव्य कहते हैं।[३] जैसे- गमन करती हुई मछली को गमन करने में पानी।

२७. **प्रश्न** : अधर्मद्रव्य किसे कहते हैं ?

उत्तर : स्वयं गतिपूर्वक स्थितिरूप परिणमन करने वाले जीव और पुद्गल को ठहरने में जो निमित्त हो; उसे अधर्मद्रव्य कहते हैं।[४] **जैसे**- पथिक को ठहरने में वृक्ष की छाया।

२८. **प्रश्न** : आकाशद्रव्य किसे कहते हैं?

उत्तर : जो जीवादिक पांचों द्रव्यों को रहने के लिए स्थान /जगह देता है; उसे आकाशद्रव्य कहते हैं। आकाशद्रव्य सर्वव्यापक है, सर्वत्र है।

२९. **प्रश्न** : आकाश के कितने भेद हैं?

उत्तर : यद्यपि आकाश एक ही अखण्ड द्रव्य है; तथापि छहों द्रव्यों की उपस्थिति व अनुपस्थिति(आकाश की उपस्थिति) के कारण उसके लोकाकाश व अलोकाकाश ये दो भेद होते हैं।

३०. **प्रश्न** : कालद्रव्य किसे कहते हैं?

उत्तर : अपनी-अपनी अवस्थारूप से स्वयं परिणमते हुए जीवादिक द्रव्यों के परिणमन में जो निमित्त हो; उसे कालद्रव्य कहते हैं।[६] **जैसे**- कुम्हार के चाक को घूमने के लिए लोहे की कीली।

---

१. पंचास्तिकाय, गाथा-७५ एवं दोनों संस्कृत टीकाएँ ।
२. पंचास्तिकाय, गाथा-७५ एवं दोनों संस्कृत टीकाएँ।सर्वार्थसिद्धि, अ.५ सूत्र. २५ की टीका । ३. पंचास्तिकाय, गाथा-८३ से८५ एवं दोनों संस्कृत टीकाएँ। ४.पंचास्तिकाय, गाथा-८६ से८६ एवं दोनों संस्कृत टीकाएँ। ५. पंचास्तिकाय, गाथा-६०से६६ एवं दोनों संस्कृत टीकाएँ। ६. पंचास्तिकाय, गाथा-१००से१०२।

२४.

नहीं दूसरा हो सके; जिसका कभी विभाग।
परमाणु कहते उसे; वह पुद्गल का भाग।।३५।।

२५.

दो या दो से हो अधिक; परमाणु का बन्ध।
आगम के अनुसार वह; कहलाता स्कन्ध।।३६।।

२६.

स्वयं गमन करते रहें; पुद्गल जीव अनन्त।
हो निमित्त इस गमन में; धर्म द्रव्य गुणवन्त।।३७।।

स्वयं गमन करती हुई; नदी-नीर में मीन।
जल तो मात्र निमित्त है; गमन करे स्वाधीन।।३८।।

२७.

थिति पावें गति पूर्वक; पुद्गल जीव अनन्त।
थिति का मात्र निमित्त जो; वही अधर्म समन्त।।३९।।

स्वयं गमन करता हुआ; पथिक करे विश्राम।
निमित्त वृक्ष की छाँव है; शेष पथिक का काम।।४०।।

२८.

जीवादि सब द्रव्य को; रहने देता थान।
व्यापक जो सर्वत्र है; वह आकाश प्रमाण।।४१।।

२९.

इक अखण्ड पर भेद दो; लोक-अलोकाकाश।।
षट् द्रव्यों का लोक है; शेष अलोकाकाश।।४२।।

३०.

जीवादिक का परिणमन; अपने से ही मान।
परिणमन का निमित्त ही; काल द्रव्य प्रमाण।।४३।।

पाकर कीली का निमित्त; घूमे चाक कुम्हार।
परिणमन में काल का; वैसा ही व्यवहार।।४४।।

३१. **प्रश्न** : कालद्रव्य के कितने भेद हैं?

उत्तर : कालद्रव्य के दो भेद हैं।[१] १. निश्चयकाल और २. व्यवहारकाल।

३२. **प्रश्न** : छहों द्रव्यों का विभाजन किस-किस प्रकार से हो सकता है?

उत्तर : द्रव्य का विभाजन निम्न चार प्रकार से हो सकता है—

क. **जीव-अजीव/चेतन-अचेतन की अपेक्षा**-जीवद्रव्य जीव है एवं पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश व काल- ये पांच द्रव्य अजीव-द्रव्य हैं।[२]

ख. **रूपी-अरूपी/मूर्तामूर्त की अपेक्षा**- एक पुद्गलद्रव्य रूपी है एवं जीव, धर्म, अधर्म, आकाश और काल- ये पांच द्रव्य अरूपी द्रव्य हैं।[३]

ग. **प्रदेशों की अपेक्षा**- कालद्रव्य ही एक प्रदेशी है एवं जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश - ये पांच द्रव्य बहु प्रदेशी द्रव्य हैं।[४]

घ. **क्रियावती शक्ति की अपेक्षा**- जीव और पुद्गल ये दो द्रव्य क्रियावती शक्ति के कारण सक्रिय हैं और धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये चार द्रव्य निष्क्रिय द्रव्य हैं।[५]

३३. **प्रश्न : द्रव्य को जानने से हमें क्या-क्या लाभ होते हैं?**

उत्तर : द्रव्य को जानने से हमें अनेक लाभ होते हैं-

१. प्रत्येक द्रव्य अनन्त गुणात्मक ठोस वस्तु है, शून्य नहीं; अत: द्रव्य की पूर्णता और परद्रव्यों से निरपेक्षता का ज्ञान होता है।

२. प्रत्येक द्रव्य विश्व के समान स्वयंभू एवं स्वतंत्र है। अत: किसी भी द्रव्य का कोई भी कर्ता-धर्ता और हर्ता नहीं है; इस सत्य का ज्ञान होता है।

३. प्रत्येक द्रव्य में अनन्तगुण और उनकी अनन्तानन्त पर्यायें रहती हैं- ऐसा जानने से द्रव्य की महिमा आती है। तथा मैं भी अनन्त गुणात्मक एक द्रव्य हूँ- इसप्रकार अपनी आत्मा की भी महिमा आती है।

---

१. पंचास्तिकाय, गाथा-१०० एवं दोनों संस्कृत टीकाएँ। २. पंचास्तिकाय, गाथा-१२४ एवं द्रव्यसंग्रह, गाथा-१। ३. पंचास्तिकाय, गाथा-९७। ४. पंचास्तिकाय, गाथा-२७ की तात्पर्यवृत्ति टीका। ५. सर्वार्थसिद्धि, अ.५ सूत्र ७ की टीका ।

३१.

भेद काल के दो कहे; निश्चय और व्यवहार।
सदा मानिये जानिये; आगम के अनुसार।।४५।।

३२.

क. जीवद्रव्य ही जीव है; बाकी सभी अजीव।
पुद्गल, धर्म, अधर्म सब; अम्बर, काल अजीव।।४६।।

ख. पुद्गल रूपी द्रव्य है; शेष अरूपी जान।
जिनवर ने भाखे स्वयं; उनकी कर पहिचान।।४७।।

ग. एक प्रदेशी काल द्रव्य; पांच रहे जो शेष।
बहु प्रदेशी हैं सभी; जानो उन्हें विशेष।।४८।।

घ. मात्र जीव-पुद्गल युगल; क्रियाशील हैं जान।
शेष सभी गतिहीन हैं; यह इनकी पहिचान।।४९।।

३३.

द्रव्य को जानने से लाभ

१. द्रव्य अनन्ते गुण सहित; ठोस वस्तु घन-पिण्ड।
शून्य नहीं परिपूर्ण हैं; पर निरपेक्ष अखण्ड।।५०।।

२. विश्व सरीखे द्रव्य भी; स्वयंभू और स्वतंत्र।
कर्ता धर्ता हैं नहीं; हर्ता नहीं स्वतंत्र।।५१।।

३. गुण अनन्त पर्याय युत; द्रव्य है महिमावन्त।
मैं भी वैसा द्रव्य हूँ; सब में महिमावन्त।।५२।।

> पुरुष अर्थात् आत्मा चेतनास्वरूप है। स्पर्श, रस, गंध और वर्ण से रहित है। गुण और पर्याय सहित तथा उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य युक्त है।— *पुरुषार्थसिद्ध्युपाय, गाथा-९*

४. परस्पर विरुद्ध स्वभावी अनन्त द्रव्य एक ही विश्व में अविरोधरूप से अनादिकाल से रहते आये हैं और अनन्तकाल तक रहेंगे; ऐसा जानने से सह-अस्तित्व की शिक्षा मिलती है।

५. प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र होने से, मैं जीव द्रव्य किसी का कुछ अच्छा-बुरा नहीं कर सकता और अन्य द्रव्य भी मेरा कुछ अच्छा-बुरा नहीं कर सकते- ऐसा निर्णय होता है।

६. प्रत्येक द्रव्य में अनन्त गुण होते हैं; इस समझ से कोई भी द्रव्य छोटा-बड़ा नहीं है; यह श्रद्धा दृढ होती है।

७. मैं भी एक द्रव्य हूँ, अत: अनन्त गुणों का पिण्ड हूँ; ऐसा जानने से अपने निज भगवान आत्मा की महिमा आती है और अन्य द्रव्यों का आकर्षण घटता है।

गुण

३४. **प्रश्न** : गुण किसे कहते हैं?

उत्तर : जो द्रव्य के सम्पूर्ण भागों में और उसकी सम्पूर्ण अवस्थाओं में रहते हैं; उन्हें गुण कहते हैं।[१]

३५. **प्रश्न** : "गुण, द्रव्य के सम्पूर्ण भागों में रहते हैं" इसका क्या आशय है?

उत्तर : गुण और द्रव्य का क्षेत्र एक ही है, छोटा-बड़ा नहीं है। उन्हें एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता, इसप्रकार गुण और द्रव्य की **क्षेत्रसम्बन्धी अखण्डता का** ज्ञान होता है।

३६. **प्रश्न** : "गुण, द्रव्य की सम्पूर्ण अवस्थाओं में रहते हैं" इसका क्या आशय है?

उत्तर : गुण और द्रव्य त्रैकालिक हैं, अत: गुण का द्रव्य में कभी अभाव नहीं होता है। इस प्रकार गुण और द्रव्य की **काल सम्बन्धी अखण्डता** का ज्ञान होता है।

---

१. न्यायदीपिका, प्रकाश-३/७८। आलापद्धति, गुणव्युत्पत्ति अ. सूत्र-६२,६३।

४. विरुध स्वभावी परस्पर; रहते द्रव्य अनन्त।
रहें अनन्ते काल तक; सह अस्तित्व समन्त॥५३॥
५. करते द्रव्य स्वतंत्र ही; अपना-अपना काम।
पर का मैं नहीं कर सकूँ; पर नहिं मेरा काम॥५४॥
६. गुण अनन्त हर द्रव्य में; रहते काल अनन्त।
इसी अपेक्षा द्रव्य सब; हैं समान गुणवन्त॥५५॥
७. मैं भी द्रव्य स्वतंत्र हूँ; गुण अनन्त का पिण्ड।
निज की महिमा अतुल है; रहता सदा अखण्ड॥५६॥

गुण

३४.

सभी द्रव्य की अवस्था; सभी द्रव्य के भाग।
गुण रहते हैं द्रव्य में, जानो यह बड़-भाग॥५७॥

३५.

एक क्षेत्र गुण-द्रव्य का; रहते हैं इक साथ।
न्यूनाधिकता कुछ नहीं, दोनों का चिर साथ॥५८॥

३६.

तीनों कालों में रहें; द्रव्य गुणों के साथ।
द्रव्य अकेला नहिं रहे, छोड़ गुणों का साथ॥५९॥

जिसप्रकार परिणमनशील होने से गुण उत्पाद-व्यय स्वरूप है, उसीप्रकार टंकोत्कीर्णन्याय से अपने स्वरूप में सदा स्थिर रहते हैं इसलिए वे नित्य भी है ॥१२०॥

ऐसा नहीं है कि किन्हीं गुणों का तो सर्वथा नाश होता जाता है और दूसरे नवीन गुणों की उत्पत्ति होती जाती है तथा उस उत्पन्न और नष्ट होनेवाले गुणों का आधार द्रव्य है ॥१२१॥ —*पंचाध्यायी, प्रथम खण्ड*

३७. **प्रश्न** : गुण और द्रव्य में परस्पर कौन-सा सम्बन्ध है?
उत्तर : गुण और द्रव्य में अनेक सम्बन्ध हैं—

अ. **नित्यतादात्म्यसिद्ध सम्बन्ध-** गुण और द्रव्य में शक्कर और मिठास के समान नित्यतादात्म्यसिद्ध सम्बन्ध है[१], शक्कर और डिब्बे के समान संयोगसिद्ध सम्बन्ध नहीं है।

आ. **अंश-अंशी सम्बन्ध-** ज्ञान और आत्मा के समान अंश-अंशी सम्बन्ध है।[२]

इ. **विशेषण-विशेष्य सम्बन्ध-** सफेदी और शक्कर के समान विशेषण-विशेष्य सम्बन्ध है।[३]

ई. **आधेय-आधार सम्बन्ध-** गुण और गुणी के समान आधेय-आधार सम्बन्ध है।[४]

३८. **प्रश्न** : गुण और द्रव्य में किस अपेक्षा अन्तर है?
उत्तर : गुण और द्रव्य में संज्ञा (नाम), संख्या (अनंत और एक), लक्षण (स्वरूप) और प्रयोजन (उद्देश्य)- की अपेक्षा अन्तर है।

३९. **प्रश्न** : गुण का द्रव्य में क्या स्थान है?
उत्तर : द्रव्य, द्रव्य-क्षेत्र-काल और भाव, इन चारों स्वरूप हैं तथा गुण इन चारों में से अकेले भावरूप है।

४०. **प्रश्न** : गुणों का कर्ता कौन है?
उत्तर : द्रव्य के समान गुण भी अनादि-अनन्त, अकृत्रिम हैं; अत: इनका कोई कर्ता नहीं है।

४१. **प्रश्न** : तत्त्वार्थसूत्र में गुण को निर्गुण क्यों कहा है?
उत्तर : जिसप्रकार द्रव्य में गुण होते हैं; उसी प्रकार एक गुण में कोई अन्य गुण नहीं होते। अर्थात् एक गुण अन्य गुण से रहित होता है; इसलिए निर्गुण कहा है।

४२. **प्रश्न** : गुणों में परिवर्तन होता है या नहीं?
उत्तर : गुणों का स्वरूप नहीं बदलता, इस अपेक्षा गुण अपरिवर्तनीय[५] अर्थात् नित्य हैं और गुण की अवस्थाएं बदलती हैं, इस अपेक्षा उनमें परिवर्तन[५] होता है।

---

१. समयसार, गाथा-६६,७० की आत्मख्याति टीका।२. सर्वार्थसिद्धि, अ.५ सूत्र. ३५ की टीका । ३. पंचाध्यायी, प्रथम खण्ड श्लोक ३८। ४. तत्त्वार्थसूत्र, अ. ५, सूत्र. ४१। प्रवचनसार, गाथा १३० की टीका तत्त्वप्रदीपिका। ५. राजवार्तिक, अ. ५ सूत्र. २४ एवं २५ की टीका। पंचाध्यायी, प्रथम खण्ड श्लोक ११२ से १५६।

३७.

अ. द्रव्य गुणों में है सदा; नित्य-तादात्म्य सम्बन्ध।
मिश्री-मीठे में यथा, रहता जो सम्बन्ध।।६०।।

शकर शकर के पात्र में; संयोगी सम्बन्ध।
द्रव्य-गुणों में है नहीं, ऐसा कुछ सम्बन्ध।।६१।।

आ. अंशी का जो अंश से; रहता है सम्बन्ध।
द्रव्य-गुणों में बन रहा; वैसा ही सम्बन्ध।।६२।।

इ. सदा विशेषण से रहे; जो विशेष सम्बन्ध।
द्रव्य-गुणों में है सदा, वैसा ही सम्बन्ध।।६३।।

ई. गुण आधेयी हैं सदा; गुणी सदा आधार।
गुण-द्रव्यों में है सदा, यह सम्बन्ध विचार।।६४।।

३८.

संख्या, लक्षण, नाम से; तथा प्रयोजन जान।
द्रव्य-गुणों में मात्र यह, अन्तर है पहिचान।।६५।।

३९.

द्रव्य, क्षेत्र अरु काल युत; भाव द्रव्य का रूप।
गुण तो द्रव्य का भाव है; भाव सदा सद्रूप।।६६।।

४०.

द्रव्य सरीखे गुण सभी; सदा अनादि अनन्त।
अकृत्रिम, कर्ता नहीं; रहते सभी समन्त।।६७।।

४१.

गुण में गुण रहते नहीं; गुण स्वतंत्र ही जान।
आगम में निर्गुण कहा, गुण की यह पहिचान।।६८।।

४२.

गुण-स्वरूप बदले नहीं; नहीं परिवर्तनशील।
मात्र अवस्था बदलती, अत: परिवर्तनशील।।६९।।

४३. **प्रश्न** : गुणों के कितने भेद हैं?
उत्तर : गुणों के दो भेद हैं।[१] १. सामान्यगुण २. विशेषगुण।

४४. **प्रश्न** : सामान्यगुण किसे कहते हैं?
उत्तर : जो गुण, सर्वद्रव्यों में रहते हैं; उनको सामान्यगुण कहते हैं।[२]

४५. **प्रश्न** : विशेषगुण किसे कहते हैं?
उत्तर : जो गुण, सर्वद्रव्यों में न रहकर अपने-अपने द्रव्य में रहते हैं; उनको विशेषगुण कहते हैं।[२]

४६. **प्रश्न** : सामान्यगुण कितने हैं?
उत्तर : सामान्यगुण **अनन्त** हैं, उनमें मुख्य छह हैं[३]— (१) अस्तित्व (२) वस्तुत्व (३) द्रव्यत्व (४) प्रमेयत्व (५) अगुरुलघुत्व और (६) प्रदेशत्व।

४७. **प्रश्न** : द्रव्य में सामान्यगुण नहीं मानेंगे तो क्या हानि होगी?
उत्तर : द्रव्य में सामान्यगुण नहीं मानेंगे तो द्रव्य की सिद्धि ही नहीं होगी।

४८. **प्रश्न** : द्रव्य में विशेषगुण नहीं मानेंगे तो क्या हानि होगी?
उत्तर : द्रव्य में विशेष गुण नहीं मानेंगे तो एक द्रव्य से दूसरा द्रव्य भिन्न ही सिद्ध नहीं होगा। सर्व द्रव्य एक हो जायेंगे; क्योंकि विशेषगुण भेद-विज्ञान का बोधक है।

४९. **प्रश्न** : जीवादि प्रत्येक द्रव्य में कौन-कौन-से सामान्य और विशेषगुण रहते हैं?
उत्तर : जीवादि सभी द्रव्यों में अस्तित्वादि अनन्त सामान्यगुण तो समानरूप से रहते ही हैं, मात्र विशेषगुण ही सब द्रव्यों में न रहकर अपने-अपने द्रव्य में ही रहते हैं[४]; वे इसप्रकार हैं—

१. **जीवद्रव्य-** ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य, श्रद्धा, चारित्र, क्रियावती शक्ति आदि।

२. **पुद्गलद्रव्य-** स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण, क्रियावती शक्ति आदि।

---

१. प्रवचनसार, गाथा ६५ की तत्त्वप्रदीपिका टीका । बृहत्नयचक्र, गाथा ११।
२. अध्यात्मकमलमार्तण्ड, अ. २ श्लोक ७,८। ३. प्रवचनसार, गाथा ६५ की टीका तत्त्वप्रदीपिका। बृहत्नयचक्र गाथा १२। आलापपद्धति, गुणाधिकार सूत्र ६।
४. आलापपद्धति, गुणाधिकार सूत्र ११।

४३.

गुण के हैं बस भेद दो; वे सामान्य विशेष।
अन्य भेद कुछ भी नहीं, जानो यही विशेष।।७०।।

४४.

सब द्रव्यों में जो रहें; वे गुण हैं सामान्य।
मात्र कल्पना है नहीं; आगम से है मान्य।।७१।।

४५.

मात्र रहें निज द्रव्य में; गुण विशेष वे जान।
अन्य द्रव्य में वे नहीं; यह उनकी पहिचान।।७२।।

४६.

गुण अनन्ते द्रव्य में; मुख्य रूप छह जान।
पहला तो अस्तित्व है; वस्तुत्व दूसरा जान।।७३।।

तीजा है द्रव्यत्व गुण; चौथा गुण प्रमेयत्व।
अगुरुलघुत्व है पांचवाँ; छठवाँ गुण प्रदेशत्व।।७४।।

४७.

बिन माने सामान्य गुण; द्रव्य-सिद्धि नहिं होय।
बिना सिद्धि के द्रव्य की; विश्व सिद्धि नहिं होय।।७५।।

४८.

गुण विशेष माने बिना; द्रव्य भिन्न नहि होय।
भेद-ज्ञान बोधक सदा; गुण विशेष ही होय।।७६।।

४९.

जीवादिक सब द्रव्य में; गुण सामान्य अनन्त।
गुण विशेष निज द्रव्य में; रहते सदा अनन्त।।७७।।

१. जीव द्रव्य में ज्ञान, सुख; दर्शन, वीर्य, चरित्र।
क्रियावती, श्रद्धा सहित; रहते परम पवित्र।।७८।।

२. पुद्गल में नित बस रहे; गंध वरण रसरूप।
क्रियावती, स्पर्श युत; रहते अपने रूप।।७९।।

३. **धर्मद्रव्य-** गतिहेतुत्व आदि।

४. **अधर्मद्रव्य-** स्थितिहेतुत्व आदि।

५. **आकाशद्रव्य-** अवगाहनहेतुत्व आदि।

६. **कालद्रव्य-** परिणमनहेतुत्व आदि।

५०. **प्रश्न : गुण को जानने से हमें क्या-क्या लाभ होते हैं?**

उत्तर : गुण को जानने से हमें अनेक लाभ होते हैं—

(१) गुणों से द्रव्य की सिद्धि होती है, अत: द्रव्य का परिचय प्राप्त होता है।

(२) एक गुण, उसी द्रव्य के अन्य गुणों में कुछ नहीं कर सकता; क्योंकि प्रत्येक गुण का लक्षण (स्वभाव) भिन्न-भिन्न ही होता है; ऐसा बोध होने से आकुलता और कर्ताबुद्धि का नाश होता है।

पर्याय

५१. **प्रश्न** : पर्याय किसे कहते हैं?

उत्तर : गुणों के कार्य को अर्थात् परिणमन को पर्याय कहते हैं।[१]

५२. **प्रश्न** : पर्याय के अन्य नाम कौन-कौन से हैं?

उत्तर : अवस्था, हालत, क्रिया, कार्य, दशा, परिणाम, परिणमन, परिणति, अंश, भाग, छेद, क्रमवर्ती, व्यतिरेकी, अनित्य, विशेष इत्यादि अनेक नाम हैं।

५३. **प्रश्न** : पर्याय के कितने भेद हैं?

उत्तर : पर्याय के दो भेद हैं[२]- १. व्यंजनपर्याय और २. अर्थपर्याय।

५४. **प्रश्न** : व्यंजनपर्याय किसे कहते हैं?

उत्तर : द्रव्य के प्रदेशत्व गुण के कार्य को व्यंजनपर्याय कहते हैं। **जैसे** -जीवादि द्रव्यों का आकार।

(जो पर्याय स्थूल, इन्द्रियगोचर, शब्दगोचर और अल्प काल स्थिर रहती है; उसे व्यंजन पर्याय कहते हैं।[३])

---

१. तत्त्वार्थसूत्र, अ.५ सूत्र. ४२। आलापपद्धति, पर्यायाधिकार सूत्र. १५।
२. आलापपद्धति, पर्यायाधिकार सूत्र. १५। ३.पंचास्तिकाय, गाथा १६ तात्पर्यवृत्ति टीका।

३-६. गतिहेतुत्व गुण धर्म का; थिति का करण अधर्म।
अवगाहन आकाश का; काल परिणमन धर्म॥८०॥

गुण को जानने से लाभ

५०.

१. गुण से सिद्धि द्रव्य की; होती आठों याम।
अत: द्रव्य का मिल रहा; परिचय ललित ललाम॥८१॥

२. अन्य गुणों में अन्य गुण; नहीं करे कुछ काम।
लक्षण सब के भिन्न हैं; करते अपना काम॥८२॥

जब होता है बोध यह; आकुलता मिट जाय।
कर्ता बुद्धि दूर हो; सहज, सुलभ सुख पाय॥८३॥

पर्याय

५१.

सदा गुणों के कार्य को; कहते हैं पर्याय।
सभी गुणों में हो रही; नयी-नयी पर्याय॥८४॥

५२.

क्रिया, कार्य, हालत, दशा; परीणमन, परिणाम।
भाग, अंश, परिणति, क्रमी; यथा अनेकों नाम॥८५॥

५३.

भेद कहे पर्याय के; दो आगम प्रमाण।
एक अर्थ पर्याय है; दूजी व्यंजन जान॥८६॥

५४.

प्रदेशत्व गुण का कार्य ही; है व्यंजन पर्याय।
अन्य गुणों से हो नहीं; मानो यह पर्याय॥८७॥

पदार्थ द्रव्यस्वरूप है; द्रव्य गुणात्मक कहे गए हैं; और द्रव्य तथा गुणों से पर्यायें होती हैं। पर्यायमूढ़ जीव पर-समय अर्थात् मिथ्यादृष्टी है। —*प्रवचनसार, गाथा-९३*

५५. **प्रश्न** : अर्थपर्याय किसे कहते हैं?

उत्तर : प्रदेशत्व गुण के अतिरिक्त शेष सम्पूर्ण गुणों के कार्य या परिणमन को अर्थपर्याय कहते हैं। **जैसे-** जीव में ज्ञानादि और पुद्गल में रसादि गुणों की अवस्थायें। (जो पर्याय सूक्ष्म, ज्ञानगोचर, अवाग्गोचर, एवं क्षणस्थायी होती है, उसे अर्थपर्याय कहते हैं।[१])

५६. **प्रश्न** : पर्याय के और कौन से भेद हैं?

उत्तर : पर्याय के (१) द्रव्यपर्याय और (२) गुणपर्याय ऐसे भी दो भेद हैं।[२]

५७. **प्रश्न** : द्रव्यपर्याय किसे कहते हैं?

उत्तर : अनेक द्रव्यों की एक जैसी भासित होने वाली अवस्था को द्रव्यपर्याय कहते हैं।[२] (अनेक द्रव्यात्मक एकता की प्रतिपत्ति की कारणभूत द्रव्यपर्याय है।)

जैसे- धोती, पुस्तक आदि; समानजातीय द्रव्यपर्याय। इनमें अनन्त पुद्गलपरमाणु एक पर्यायरूप भासित होते हैं। जीव की नर-नारकादि पर्याय असमानजातीयद्रव्यपर्याय हैं। इनमें भी अनन्त पुद्गल परमाणु (औदारिक शरीररूप परिणत आहार वर्गणा, तैजस शरीररूप परिणत तैजस वर्गणा एवं आठ कर्मरूप परिणत कार्मण वर्गणा) और एक जीव, इन सबकी मिलकर एक पर्याय भासित होती है।

५८. **प्रश्न** : गुणपर्याय किसे कहते हैं ?

उत्तर : अर्थपर्याय को ही गुणपर्याय कहते हैं।[३]

५९. **प्रश्न** : व्यंजनपर्याय के कितने भेद हैं ?

उत्तर : व्यंजनपर्याय के दो भेद हैं[४]

(१) स्वभावव्यंजनपर्याय (२) विभावव्यंजनपर्याय।

---

१. पंचास्तिकाय, गाथा-१६ की तात्पर्यवृत्ति टीका। २. प्रवचनसार, गाथा ६३ की टीका तत्त्वप्रदीपिका। ३. पंचाध्यायी, प्रथम खण्ड श्लोक ६२। ४. पंचास्तिकाय, गाथा-१६ की तात्पर्यवृत्ति टीका। ५. पंचास्तिकाय, गाथा-१६ की तात्पर्यवृत्ति टीका।

५५.

शेष गुणों का परिणमन; कही अर्थ पर्याय।
ज्ञानादि गुण की यथा; जानो तुम पर्याय।।८८।।

५६.

पर्यायों के भेद दो; एक द्रव्य पर्याय।
आगम से प्रमाण है, दूजी गुण पर्याय।।८९।।

५७.

भासित हो इक सारखी; द्रव्यों की पर्याय।
उसी अवस्था को कहें; द्रव्य रूप पर्याय।।९०।।

धोती, पुस्तक रूप में; समजाती पर्याय।
है अनन्त परमाणु की; एक रूप पर्याय।।९१।।

नर, नारक अरु देव की; असमानी पर्याय।
मिलकर पुद्गल जीव की; कहीं जीव-पर्याय।।९२।।

५८.

अर्थ रूप पर्याय ही; जानों गुण पर्याय।
नाम भेद से दो कहीं; किन्तु एक पर्याय।।९३।।

५९.

स्वभाव और विभाव से; व्यंजन दो पर्याय।
आगम से प्रमाण है; यह दोनों पर्याय।।९४।।

प्रत्येक द्रव्य सदा स्वभाव में रहता है, इसलिये 'सत्' है। वह स्वभाव उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यस्वरूप परिणाम है। जैसे द्रव्य के विस्तार का छोटे से छोटा अंश वह प्रदेश है, उसीप्रकार द्रव्य के प्रवाह का छोटे से छोटा अंश वह परिणाम है, प्रत्येक परिणाम स्व-काल में अपने रूप से उत्पन्न होता है, पूर्वरूप से नष्ट होता है और सर्व परिणामों में एकप्रवाहपना होने से प्रत्येक परिणाम उत्पाद-विनाश से रहित एकरूप–ध्रुव रहता है। और उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य में समयभेद नहीं है, तीनों एक ही समय में है। ऐसे उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक परिणामों की परम्परा में द्रव्य स्वभाव से ही सदा रहता है, इसलिये द्रव्य स्वयं भी, मोतियों के हार की भाँति, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक है। *—प्रवचनसार गाथा ९९ का भावार्थ*

६०. **प्रश्न** : स्वभावव्यंजन पर्याय किसे कहते हैं ?

उत्तर : परनिमित्त के सम्बन्ध से रहित द्रव्य का जो आकार होता है; उसे स्वभावव्यंजनपर्याय कहते हैं।[५] **जैसे**- जीव की सिद्ध पर्याय और, पुद्गल की परमाणुरूप पर्याय।

६१. **प्रश्न** : विभावव्यंजनपर्याय किसे कहते हैं?

उत्तर : परनिमित्त के सम्बन्ध से सहित जो द्रव्य का आकार होता है; उसे विभावव्यंजनपर्याय कहते हैं।[१] **जैसे**- जीव की नर-नारकादि पर्याय और पुद्गल की स्कन्धरूप पर्याय।

६२. **प्रश्न** : अर्थपर्याय के कितने भेद हैं?

उत्तर : अर्थपर्याय के दो भेद हैं[२]- (१) स्वभावअर्थपर्याय (२) विभावअर्थपर्याय।

६३. **प्रश्न** : स्वभावअर्थपर्याय किसे कहते हैं?

उत्तर : परनिमित्त के सम्बन्ध से रहित जो अर्थपर्याय होती है; उसे स्वभावअर्थपर्याय कहते हैं।[३] **जैसे**- जीव की केवलज्ञान पर्याय।

६४. **प्रश्न** : विभावअर्थपर्याय किसे कहते हैं?

उत्तर : परिनिमित्त के सम्बन्ध से जो अर्थपर्याय होती है; उसे विभाव-अर्थपर्याय कहते हैं।[४] **जैसे**- जीव के राग-द्वेष आदि पर्याय।

६५. **प्रश्न** : किस-किस द्रव्य में कौन-कौनसी पर्यायें होती हैं?

उत्तर : जीव और पुद्गल द्रव्य में स्वभावअर्थपर्याय, विभावअर्थपर्याय, स्वभावव्यंजनपर्याय और विभावव्यंजनपर्याय - इसप्रकार चारों प्रकार की पर्यायें होती हैं।

धर्म, अधर्म, आकाश और काल इन चारों द्रव्यों में स्वभावअर्थपर्याय और स्वभावव्यंजनपर्याय ही होती हैं । इनमें दोनों विभावपर्यायें होती ही नहीं।[५]

---

१. पंचास्तिकाय, गाथा-१६ की तात्पर्यवृत्ति टीका ।
२. पंचास्तिकाय, गाथा-१६ की तात्पर्यवृत्ति टीका ।
३. पंचास्तिकाय, गाथा-१६ की तात्पर्यवृत्ति टीका ।
४. पंचास्तिकाय, गाथा-१६ की तात्पर्यवृत्ति टीका ।
५. नियमसार, गाथा-१६८ की पद्मप्रभमलधारिदेवकृत तात्पर्यवृत्ति टीका ।

६०.

जहाँ निमित्त पर का नहीं; मात्र द्रव्य-आकार।
हैं स्वभाव व्यंजन वहीं; पर्यायें साकार।।९५।।

६१.

पर निमित्त से बन रहे; द्रव्यों के आकार।
वह विभाव व्यंजन कही; पर्यायें साकार।।९६।।

६२.

स्वभाव और विभाव दो; भेद अर्थ पर्याय।
आगम के प्रमाण से; जानों यह पर्याय।।९७।।

६३.

पर निमित्त कुछ भी नहीं; नहिं पर से सम्बन्ध।
स्वभाव अर्थ पर्याय का; ऐसा ही प्रबन्ध।।९८।।

जैंसे केवल-ज्ञान की; प्रगट हुई पर्याय।
पर निमित्त उसमें नहीं; सहज शुद्ध पर्याय।।९९।।

६४.

पर निमित्त सम्बन्ध से; होती जो पर्याय।
विभाव अर्थ पर्याय ही; राग-द्वेष पर्याय।।१००।।

६५.

जीव और पुद्‌गल करें; सभी अर्थ पर्याय।
अरु दोनों में हो रहीं; सब व्यंजन पर्याय।।१०१।।

शेष द्रव्य की हो रही; नित स्वभाव पर्याय।
अर्थ और व्यंजन सहित; नहिं विभाव पर्याय।।१०२।।

> जो जीव पर्यायों में लीन हैं, उन्हें परसमय कहा गया है। जो जीव आत्मस्वभाव में स्थित हैं, वे स्वसमय जानने।
>
> *—प्रवचनसार गाथा-९४*

६६. **प्रश्न** : श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र —इन गुणों की कौन-कौनसी पर्यायें होती हैं?

उत्तर : श्रद्धादि गुणों की पर्याय निम्न प्रकार हैं-:

१. **श्रद्धागुण**—मिथ्यात्व व सम्यक्त्व ये दो पर्यायें।

२. **ज्ञानगुण**— कुमति, कुश्रुत, विभंगावधि —ये तीन मिथ्याज्ञानरूप एवं मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय और केवलज्ञान- ये पाँच सम्यग्ज्ञानरूप इसप्रकार कुल आठ पर्यायें।[1]

३. **चारित्रगुण**— मिथ्याचारित्र व सम्यक्चारित्र —ये दो पर्यायें।

६७. **प्रश्न** : स्पर्शादि गुणों की पर्यायें कौन-कौनसी हैं?

उत्तर : स्पर्शादि गुणों की पर्यायें निम्न प्रकार हैं —

१. **स्पर्श**— शीत, उष्ण, स्निग्ध, रुक्ष, हल्का, भारी, कोमल, कठोर— ये आठ पर्यायें।[2]

२. **रस**— मीठा, कडुवा, चरपरा, खट्टा व कसायला - ये पाँच पर्यायें।[2]

३. **गंध**— सुगन्ध और दुर्गन्ध - ये दो पर्यायें।[3]

४. **वर्ण**— काला, सफेद, नीला, लाल व पीला —ये पाँच पर्यायें।[3]

६८. **प्रश्न : पर्याय को जानने से हमें क्या-क्या लाभ होते हैं?**

उत्तर : पर्याय का स्वरूप जानने से हमें अनेक लाभ होते हैं—

१. द्रव्य के परिणमन स्वभाव का ज्ञान होने से परसन्मुखता का नाश होकर आत्मसन्मुख प्रवृत्ति होती है।

२. द्रव्य और गुणों के सहज व स्वत:सिद्ध वैभव को प्रगट करने का द्वार मात्र पर्याय ही है। अत: द्रव्य और गुणों का परिचय पर्याय के माध्यम से ही प्राप्त होता है।

३. जीव की पूर्ण शुद्धपर्याय-कार्य परमात्मा (अरहंत-सिद्ध) हैं; ऐसा जानने से अनादि-अनन्त, सहज, शुद्ध, कारण-परमात्मा का ज्ञान होता है।

---

१. तत्त्वार्थसूत्र, अ.१ सूत्र-३१।

२. सर्वार्थसिद्धि, अ.५ सूत्र-२३ की टीका।

३. सर्वार्थसिद्धि, अ.५ सूत्र-२३ की टीका।

६६.

१. श्रद्धा गुण की दो कहीं; पर्यायें लो जान।
पहली तो मिथ्यात्व है; दूजी सम्यक् जान।।१०३।।

२. आठ कही गुण ज्ञान की; जानों तुम पर्याय।
कुमति कुश्रुत विभंगावधि; है मिथ्या पर्याय।।१०४।।

मति श्रुत, अवधि, मन:पर्यय; जानों केवलज्ञान।
पाँच कही सम्यक् सदा; पर्यायें भगवान ।।१०५।।

३. सम्यक् व मिथ्या कही; चारित्र-गुण पर्याय।
होती हैं चारित्र की; ये दोनों पर्याय।।१०६।।

६७.

१. शीत, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष; हल्की, भारी मान।
कड़ी, नरम पर्याय सब; गुण स्पर्श की जान।।१०७।।

२. मीठी, कड़वी, चरपरी; खट्टी तथा कसाय।
रस गुण की पाँचों कही; जानो तुम पर्याय।।१०८।।

३. सुगन्ध और दुर्गन्ध युत; होती जो पर्याय।
ये दोनों गुण गंध की; जानो तुम पर्याय।।१०९।।

४. कृष्ण, शुभ्र, लाली सहित; नील, पीत पर्याय।
कहलाती हैं वर्ण की; आगम में पर्याय।।११०।।

पर्याय को जानने से लाभ

६८.

१. पर-सन्मुखता नहिं रहे; देख द्रव्य-परिणाम।
स्व-सन्मुखता ही बढ़े; है इसका परिणाम।।१११।।

२. द्रव्य-गुणों के ज्ञान का; द्वार मात्र पर्याय।
स्वयं-सिद्ध वैभव प्रगट; परिचय दे पर्याय।।११२।।

३. अरहंत सिद्ध की अवस्था; पूर्ण शुद्ध पर्याय।
मैं कारण परमात्मा; परिचय दे पर्याय।।११३।।

४. आस्रवादि विशेष तत्त्वों के ज्ञान से हेय-उपादेय का विवेक प्रगट होता है।

५. प्रत्येक द्रव्य का परिणमन उसके पर्यायस्वभाव से ही होता है; ऐसा जानने से निमित्ताधीन दृष्टि मिटती है।

अस्तित्व गुण

६९. **प्रश्न** : अस्तित्व गुण किसे कहते हैं?

उत्तर : जिस शक्ति के कारण द्रव्य का कभी नाश नहीं होता और द्रव्य किसी से उत्पन्न भी नहीं होता; उसे अस्तित्व गुण कहते हैं।[१]

७०. **प्रश्न** : अस्तित्व गुण के कारण द्रव्य को क्या कहते हैं?

उत्तर : अस्तित्व गुण के कारण द्रव्य को सत् या सत्ता कहते हैं।

७१. **प्रश्न** : अस्तित्व गुण न मानने से क्या हानि होगी?

उत्तर : अस्तित्व गुण न मानने से द्रव्य के सर्वथा अभाव का प्रसंग आयेगा और द्रव्य का सर्वथा अभाव मानने से विश्व का भी अभाव हो जायगा । अर्थात् सर्व शून्यता की आपत्ति आयेगी।

७२. **प्रश्न : अस्तित्व गुण को जानने से हमें क्या-क्या लाभ होते हैं?**

उत्तर : अस्तित्व गुण को जानने से हमें अनेक लाभ होते हैं-

१. जन्म-मरण से रहित अनादि-अनन्त अपने अस्तित्व गुण का ज्ञान होने से मरण भय मिट जाता है।

२. मैं किसी की रक्षा नहीं कर सकता और न कोई मेरी रक्षा कर सकता है; कारण मैं स्वयं सुरक्षित हूँ; इसलिए अरक्षा भय नष्ट हो जाता है।

३. प्रत्येक जीव भी जन्म-मरण से रहित अनादि-अनन्त है; इसलिए मैं किसी को बचा सकता हूँ या मार सकता हूँ; ऐसी मिथ्या मान्यता मिट जाती है।

४. प्रत्येक द्रव्य व विश्व अनादि-अनन्त है; अत: किसी ने इस विश्व को बनाया है, कोई इसका रक्षण करता है या कोई नाश करता है; ऐसी मिथ्या मान्यता मिट जाती है।

५. अस्तित्व गुण की अपेक्षा जीवादि सभी द्रव्य समान होने से विषमता का भाव निकल जाता है और समताभाव प्रगट होता है।

---

१. आलापपद्धति, गुणाधिकार सूत्र-६ एवं गुणव्युत्पत्ति अधिकार सूत्र-६४। नियमसार, गाथा-३४ की पद्मप्रभमलधारिदेवकृत तात्पर्यवृत्ति टीका ।

४. आस्रवादि के ज्ञान से; ज्ञात होंय सब ज्ञेय।
उपादेय क्या है हमें ?; क्या है हमको हेय ?॥११४॥

५. सब द्रव्यों का परिणमन; है पर्याय-स्वभाव।
निमित्ताधीनी दृष्टि का; रहता नहीं सद्भाव॥११५॥

अस्तित्व गुण

६९.

जिस शक्ति से द्रव्य का; नहीं नाश-उत्पाद।
कहलाता अस्तित्व गुण; छोड़ सभी अपवाद॥११६॥

७०.

कहलाता अस्तित्व से; सत, सत्ता भी द्रव्य।
सत्ता जिसकी नित रहे; ऐसा अद्‌भुत द्रव्य॥११७॥

७१.

नहिं माने अस्तित्व गुण; द्रव्य का बने अभाव।
यह प्रसंग आ जायेगा; जानों वस्तु-स्वभाव॥११८॥

अस्तित्व गुण को जानने से लाभ

७२.

१. जन्म-मरण से रहित हूं; नित्य अनादि अनन्त।
मरने का भय मिट गया; सदा रहूँ जयवन्त॥११९॥

२. नहिं रक्षा पर की करूँ; नहिं मम रक्षक कोय।
अरक्षा-भय भी स्वयं; मिट जाता भ्रम खोय॥१२०॥

३. जन्म-मरण होता नहीं; जीव अनादि अनन्त।
मार-बचा सकता नहीं; भ्रम बुद्धि का अन्त॥१२१॥

४. नहीं बनाया किसी ने; नहिं कर सकता नाश।
विश्व अनादि-अनन्त है; आगम का प्रकाश॥१२२॥

५. सब का है अस्तित्व सम; नहीं विषमता भाव।
रहती है हर द्रव्य में; समता सहज स्वभाव॥१२३॥

६. प्रत्येक द्रव्य का अस्तित्व स्वतंत्र है; ऐसा ज्ञान होने से पर द्रव्य में एकत्व-ममत्व-कर्तृत्व एवं भोक्तृत्वबुद्धि का नाश हो जाता है।
७. मैं किसी को उत्पन्न नहीं कर सकता और मुझे भी किसी नें उत्पन्न नहीं किया है; अत: अभिमान और हीनभाव का नाश हो जाता है।

वस्तुत्व गुण

७३. **प्रश्न** : वस्तुत्व गुण किसे कहते हैं ?
उत्तर : जिस शक्ति के कारण द्रव्य में अर्थक्रियाकारित्व (प्रयोजनभूतक्रिया) होता है; उसे वस्तुत्व गुण कहते हैं।[१]

७४. **प्रश्न** : अर्थक्रियाकारित्व से क्या आशय है ?
उत्तर : प्रत्येक द्रव्य अपने-अपने स्वभाव के अनुसार ही कार्य करता है अथवा द्रव्य में कार्य होता है; इसे ही अर्थक्रियाकारित्व या प्रयोजनभूतक्रिया कहते हैं।[२] **जैसे-** आंख देखने का काम करती है, कान सुनने का काम करते हैं, वैसे ही जीव जानने-देखने का कार्य करता है; अन्य कार्य नहीं।

७५. **प्रश्न** : वस्तुत्व गुण के कारण से द्रव्य को क्या कहते हैं?
उत्तर : वस्तुत्व गुण के कारण से द्रव्य को वस्तु कहते हैं। द्रव्य में गुण बसते हैं; इसलिए द्रव्य वस्तु है।

७६. **प्रश्न** : वस्तुत्व गुण को नहीं मानने से क्या हानि होगी?
उत्तर : वस्तुत्व गुण को नहीं मानने से द्रव्य के निरर्थकपने-कार्यशून्यता का प्रसंग आयेगा।

७७. **प्रश्न : वस्तुत्वगुण को जानने से हमें क्या-क्या लाभ होते हैं?**
उत्तर : वस्तुत्व गुण को जानने से हमें अनेक लाभ होते हैं-

१. प्रत्येक द्रव्य अपनी-अपनी प्रयोजनभूतक्रिया करता है । अत: जगत का कोई भी पदार्थ निरर्थक नहीं है; ऐसा ज्ञान होता है।
२. प्रत्येक द्रव्य की प्रयोजनभूतक्रिया उसके वस्तुत्व गुण के कारण से ही होती है; अन्य किसी कारण से नहीं; इस प्रकार वस्तु की स्वतंत्रता का ज्ञान होता है।

---

१. आलापपद्धति, गुणाधिकार सूत्र-६ एवं गुणव्युत्पत्ति अधिकार सूत्र-६५।
२. कार्तिकेयानुप्रेक्षा, गाथा-२२५,२२६।

६. सभी द्रव्य अस्तित्व से; रहें सदा निज भाव।
कर्ता-भोक्ता दृष्टि का; होता दूर विभाव।।१२४।।

७. नहीं करूँ उत्पन्न मैं; करे कौन मम नाश?
नहीं रहे अभिमान कुछ; हीन भाव का नाश।।१२५।।

वस्तुत्व गुण

७३.

जिस शक्ति से द्रव्य में; अर्थक्रिया का कार्य।
कहलाता वस्तुत्व गुण; वही प्रयोजन कार्य।।१२६।।

७४.

अपने-अपने द्रव्य में; अपना-अपना कार्य।
कहा प्रयोजनभूत वह; होता जो भी कार्य।।१२७।।

७५.

कारण ही वस्तुत्व के; कहें द्रव्य को वस्तु।
अन्यरूप होती नहीं; सहज सिद्ध है वस्तु।।१२८।।

७६.

नहीं माने वस्तुत्व गुण; रहे द्रव्य निष्काम।
कार्य-शून्यता का सदा; बना रहे आयाम।।१२९।।

वस्तुत्व गुण को जानने से लाभ

७७.

ोजन के हित करें; सभी द्रव्य नित काम।
द्रव्य निरर्थक हैं नहीं; करते अपना काम।।१३०।।

२. होती है वस्तुत्व से; क्रिया आठों याम।
ईश्वर आदिक नहिं करें; द्रव्य करें निज काम।।१३१।।

इस जगत में वस्तु है वह (अपने) स्वभावमात्र ही है और 'स्व' का भवन (होना) वह स्व-भाव है; इसलिये निश्चय से ज्ञान का होना—परिणमना सो आत्मा है और क्रोधादि का होना—परिणमना सो क्रोधादि है। *—समयसार, गाथा ७१ की टीका*

३. अपने ज्ञान-दर्शनरूप प्रयोजनभूत कार्य का कर्ता मैं स्वयं हूँ; पुस्तक, अध्यापक आदि अन्य पदार्थ नहीं; इस प्रकार स्वावलंबन का ज्ञान होता है।

४. परद्रव्यों का कार्य भी उनकी प्रयोजनभूतक्रिया है- वह उनके वस्तुत्व गुण से हुई है; ऐसा जानने से उनके प्रति राग-द्वेष उत्पन्न नहीं होते।

५. जानना जीव की प्रयोजनभूतक्रिया है। अत: वह दु:ख का कारण नहीं हो सकती।

६. अरहंत और सिद्धों के समान मैं मात्र ज्ञान-दर्शनस्वभावी हूँ। तथा सभी जीव ज्ञान-दर्शनस्वभावी ही हैं; ऐसी श्रद्धा उत्पन्न होती है।

७. जानने-देखने के अतिरिक्त मेरा और कोई कार्य नही; ऐसा जानने से अपनी कार्यसीमा का ज्ञान और परकर्तृत्व का निषेध होता है।

द्रव्यत्व गुण

७८. **प्रश्न** : द्रव्यत्व गुण किसे कहते हैं?

उत्तर : जिस शक्ति के कारण द्रव्य की अवस्थायें निरन्तर बदलती रहती हैं; उसे द्रव्यत्व गुण कहते हैं।[१]

७९. **प्रश्न** : द्रव्यत्व गुण के कारण वस्तु को क्या कहते हैं?

उत्तर : द्रव्यत्व गुण के कारण वस्तु को द्रव्य कहते हैं।

८०. **प्रश्न** : द्रव्यत्व गुण नहीं मानने से क्या हानि होगी?

उत्तर : द्रव्यत्व गुण नहीं मानने से द्रव्य के सर्वथा कूटस्थ (नित्य) हो जाने का प्रसंग आयेगा; जो प्रत्यक्ष में असत्य है।

८१. **प्रश्न : द्रव्यत्व गुण को जानने से हमें क्या-क्या लाभ होते हैं?**

उत्तर : द्रव्यत्व गुण को जानने से हमें अनेक लाभ होते हैं-

१. द्रव्य सर्वथा कूटस्थ (नित्य) है; इस मिथ्या मान्यता का निराकरण होता है और वस्तुस्वरूप का यथार्थ ज्ञान होता है।

२. प्रत्येक द्रव्य के परिणमन की स्वतंत्रता का ज्ञान होता है। **जैसे-** संपूर्ण शरीर एवं शरीर के दांत आदि अवयव सतत बदलते रहते हैं।

---

१. आलापपद्धति, गुणाधिकार सूत्र-६ एवं गुणव्युत्पत्ति अधिकार सूत्र-६६।

३. ज्ञान, दर्श की जो क्रिया; उसका कर्ता जीव।
अन्य कोई कर्ता नहीं; मानो यही सदीव॥१३२॥

४. सभी द्रव्य करते स्वयं; अपना-अपना काम।
राग-द्वेष होता नहीं; करें कोई कुछ काम॥१३३॥

५. जानन-क्रिया जीव की; कही प्रयोजनभूत।
दु:ख का कारण क्यों बने?; होती जब स्व भूत॥१३४॥

६. सिद्ध और अरहंत-सा; दर्शन-ज्ञान स्वभाव।
सब जीवों का एक सम; श्रद्धा का सद्भाव॥१३५॥

७. मात्र जानना, देखना; मेरा है नित काम।
अपनी सीमा में सदा; करता हूँ विश्राम॥१३६॥

द्रव्यत्व गुण

७८.

जिस शक्ति से द्रव्य की; बदल रही पर्याय।
कहलाता द्रव्यत्व गुण; द्रवना उसका कार्य॥१३७॥

७९.

द्रव्य कहें हर वस्तु को; कारण गुण द्रव्यत्व।
सदा रहे हर द्रव्य में; वस्तु का द्रव्यत्व॥१३८॥

८०.

द्रव्य रहे कूटस्थ ही; बिन माने द्रव्यत्व।
आयेगा प्रसंग यह; कहाँ रहा द्रव्यत्व? ॥१३९॥

द्रव्यत्व गुण को जानने से लाभ

८१.

१. द्रव्य नहीं कूटस्थ है; यही मान्यता सत्य।
सत्य सदा जीवन्त है; मिटता रहे असत्य॥१४०॥

२. द्रव्यों का सब परिणमन; होता सदा स्वतंत्र।
सहज ज्ञान होता हमें; नहीं कोई परतंत्र॥१४१॥

३. परपदार्थों की कर्तृत्व बुद्धि का नाश होता है।

४. पराश्रित बुद्धि का नाश होता है।

५. मैं अपने परिणमन का कर्त्ता स्वयं हूँ; ऐसा जानने से स्व-सन्मुखता की प्रेरणा मिलती है।

६. परिणमन करना वस्तु का स्वभाव है; ऐसा ज्ञान होने से किसी भी परिवर्तन को देखकर भय उत्पन्न नहीं होता; जीवन सहज एवं सुखद होता है।

७. किसी भी वस्तु की स्थिति सदा एकसी नहीं रहती है; ऐसा जानने से परद्रव्यों के प्रति राग-द्वेष उत्पन्न नहीं होते और जीवन में समता भाव प्रगट होता है।

८. वर्तमान दुःखमय संसार अवस्था का नाश होकर सुखरूप सिद्ध दशा प्रगट हो सकती है; ऐसा विश्वास उत्पन्न होता है।

९. पर्याय निरन्तर बदलती रहती है; ऐसा जानने से पर्याय मूढ़ता नष्ट हो जाती है।

१०. पर दोष देखने की हीन भावना का अभाव हो जाता है और कर्म बलवान है; ऐसी मिथ्या भ्रांति निकल जाती है।

प्रमेयत्व गुण

८२. **प्रश्न** : प्रमेयत्व गुण किसे कहते हैं?
उत्तर : जिस शक्ति के कारण द्रव्य किसी न किसी ज्ञान का विषय/ज्ञेय होता है; उसे प्रमेयत्व गुण कहते हैं।[१]

८३. **प्रश्न** : प्रमेयत्व गुण के कारण द्रव्य को क्या कहते हैं?
उत्तर : प्रमेयत्व गुण के कारण द्रव्य को प्रमेय अथवा ज्ञेय कहते हैं।

८४. **प्रश्न** : जीवादि छह द्रव्यों में ज्ञेयरूप द्रव्य कितने व ज्ञातारूप द्रव्य कितने एवं कौन-कौन से हैं?
उत्तर : जीवादि छहों ही द्रव्य ज्ञेय हैं; क्योंकि सभी में प्रमेयत्व नाम का गुण है और एक जीवद्रव्य ही ज्ञातारूप द्रव्य है; क्योंकि जीव ज्ञानवान है।

१. आलापपद्धति, गुणाधिकार सूत्र-६ एवं गुणव्युत्पत्ति अधिकार सूत्र-९८।

३-४.पर की कर्ता बुद्धि का; हो जाता है नाश।
सहज पराश्रितबुद्धि का; होता सदा विनाश।।१४२।।

५. मेरा कर्ता मैं स्वयं; जब लेता हूँ मान।
स्व सन्मुखता की मिले; सहज प्रेरणा ज्ञान।।१४३।।

६. हर वस्तु का परिणमन; है स्वाभाविक जान।
परिवर्तन को देख कर; भय का नहीं निशान।।१४४।।

७. वस्तु की थिति एक सी; नहीं रहती लो जान।
राग-द्वेष पर द्रव्य से; नहिं करते धीमान।।१४५।।

८. वर्तमान दुखमय दशा; होगी सिद्ध समान।
हो ऐसा विश्वास जब; आता है बहुमान।।१४६।।

९. पर्यायों का बदलना; होता प्रतिक्षण जान।
मूढ़पना पर्याय का; मिटता सहज सुजान।।१४७।।

१०. पर दोषों का देखना; हीन भाव का नाश।
कर्म बड़े बलवान हैं; इस भ्रम का भी नाश।।१४८।।

प्रमेयत्व गुण

८२.

जिस शक्ति से द्रव्य नित; बने ज्ञान का ज्ञेय।
गुण प्रमेयत्व है वही; नहीं द्रव्य अज्ञेय।।१४९।।

८३.

द्रव्य प्रमेयत्व गुण से; कहलाता है ज्ञेय।
आता है नित ज्ञान में; नहीं रहे अज्ञेय।।१५०।।

८४.

छहों द्रव्य तो ज्ञेय हैं; बनते सदा प्रमेय।
ज्ञाता केवल जीवद्रव्य; अन्य सभी हैं ज्ञेय।।१५१।।

८५. **प्रश्न** : ज्ञेय और ज्ञातारूप कौन-सा द्रव्य है?
उत्तर : एक जीवद्रव्य ही ज्ञेय और ज्ञातारूप द्रव्य है।

८६. **प्रश्न** : प्रमेयत्व गुण न मानने से क्या हानि होगी?
उत्तर : प्रमेयत्व गुण न मानने से द्रव्य के सर्वथा अज्ञात होने का प्रसंग आयेगा और जीव अपने को भी नहीं जान सकेगा एवं केवलज्ञान की भी सिद्धि नहीं होगी।

८७. **प्रश्न : प्रमेयत्व गुण को जानने से हमें क्या-क्या लाभ होते हैं?**
उत्तर : प्रमेयत्व गुण को जानने से हमें अनेक लाभ होते हैं-

१. प्रत्येक जीव में प्रमेयत्व गुण होने से वह अपने आत्मा को जान सकता है; ऐसा विश्वास उत्पन्न होता है।

२. हमारे पाप कार्यों को अरहंत व सिद्ध भगवान जानते हैं; ऐसा ज्ञान होने से हमें पाप छोड़ने की प्रेरणा मिलती है।

३. छहों द्रव्यों में प्रमेयत्व गुण होने से वे द्रव्य (गुण-पर्यायों के साथ) किसी न किसी ज्ञान द्वारा जाने जा सकते हैं; अत: केवलज्ञान की सिद्धि होती है।

४. परद्रव्यों के साथ मेरा मात्र ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध है, कर्ता-कर्म आदि अन्य कोई सम्बन्ध नहीं है; ऐसा ज्ञान होने से परद्रव्यों के प्रति कर्तृत्व-भोक्तृत्व बुद्धि मिटती है।

५. प्रमेयत्व गुण के कारण पदार्थ, ज्ञान में सहज ही ज्ञात होते हैं; अत: उनको जानने की आकुलता का नाश हो जाता है।

६. प्रत्येक पदार्थ अपनी सीमा में (ज्ञेय वस्तु अपने स्थान पर, ज्ञानरूप ज्ञाता अर्थात् जीव द्रव्य भी अपने ही स्थान पर) रहकर ज्ञान का ज्ञेय बनता है; ऐसा जानने से ज्ञाता और ज्ञेय की भिन्नता का ज्ञान होता है।

८५.

ज्ञेय और ज्ञाता सदा; जीवद्रव्य ही जान।
अन्य द्रव्य ज्ञाता नहीं; है प्रत्यक्ष प्रमाण॥१५२॥

८६.

प्रमेयत्व माने नहीं; द्रव्य रहे अज्ञात।
आयेगा प्रसंग यह; जीव न होगा ज्ञात॥१५३॥

नहीं रहे सर्वज्ञता; ना हो केवलज्ञान।
वस्तु ज्ञात होगी नहीं; छा जाये अज्ञान॥१५४॥

प्रमेयत्व गुण जानने से लाभ

८७.

१. जीव स्वयं ज्ञातृत्व से; करे द्रव्य का ज्ञान।
इस गुण के आधार पर; करते आतम ज्ञान॥१५५॥

२. कहीं पाप छिपकर करो; जाने सब भगवान।
पाप-वृत्ति होती नहीं; मिट जाता अज्ञान ॥१५६॥

३. द्रव्यों के प्रमेयत्व से; सिद्धि केवलज्ञान।
छिप सकता कुछ भी नहीं; होता सब का ज्ञान॥१५७॥

४. पर-द्रव्यों के साथ बस; ज्ञान-ज्ञेय सम्बन्ध।
कर्ता-भोगी वृत्ति से; नहीं कभी सम्बन्ध॥१५८॥

५. सहज ज्ञान में आ रहे; सभी द्रव्य प्रमेय।
आकुलता फिर क्यों रहे?; बनते हैं सब ज्ञेय॥१५९॥

६. सीम द्रव्य छोड़े नहीं; बने ज्ञान का ज्ञेय।
ज्ञेय ज्ञान की भिन्नता; भासित हो स्वयमेव॥१६०॥

अगुरुलघुत्व गुण

८८. **प्रश्न** : अगुरुलघुत्व गुण किसे कहते हैं?

उत्तर : जिस शक्ति के कारण द्रव्य में द्रव्यपना कायम रहता है अर्थात् एक द्रव्य दूसरे द्रव्यरूप नहीं होता, एक गुण दूसरे गुणरूप नहीं होता और द्रव्य में रहने वाले अनन्त गुण बिखरकर अलग-अलग नहीं हो जाते ; उसे अगुरुलघुत्व गुण कहते हैं।[१]

८९. **प्रश्न** : अगुरुलघुत्व शब्द का क्या अर्थ है?

उत्तर : अ = नहीं, गुरु = बड़ा, लघु = छोटा। अर्थात् प्रत्येक द्रव्य अपने में पूर्ण होता है, छोटा-बड़ा नहीं।

९०. **प्रश्न** : अगुरुलघुत्व गुण न मानने से क्या हानि होगी?

उत्तर : अगुरुलघुत्व गुण न मानने से द्रव्य-गुण-पर्याय की स्वतंत्रता के नाश हो जाने का प्रसंग आयेगा।

९१. **प्रश्न : अगुरुलघुत्व गुण को जानने से हमें क्या-क्या लाभ होते हैं?**

उत्तर : अगुरुलघुत्व गुण को जानने से हमें अनेक लाभ होते हैं-

१. विश्व का प्रत्येक द्रव्य, द्रव्य का प्रत्येक गुण और गुण की प्रत्येक पर्याय अपनी-अपनी अपेक्षा से सत्, अहेतुक एवं निरपेक्ष है; इस तरह वस्तु-व्यवस्था का स्पष्ट एवं पक्का निर्णय होता है।

२. प्रत्येक वस्तु का द्रव्य, क्षेत्र, काल एवं भाव भिन्न-भिन्न ही होने से एक वस्तु का अन्य वस्तु से किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नहीं अर्थात् प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र ही है; ऐसा वस्तुस्वरूप का यथार्थ ज्ञान होता है।

३-४. एक द्रव्य अन्य द्रव्यरूप नहीं होता अर्थात् जीवद्रव्य पुद्गलादि अन्य द्रव्यरूप नहीं परिणमते; बदलते नहीं। अथवा जीवद्रव्य दूसरे जीव द्रव्यरूप भी नहीं परिणमते। जीवद्रव्य, जीवद्रव्य ही और पुद्गलादि द्रव्य भी पुद्गलादि अपनेरूप ही रहते हैं। **जैसे-** शरीर (पुद्गल) कभी भी जीवरूप नहीं बदलता। टी. वी., टेपरेकार्ड, रेडियो कभी जीव नहीं होते। लक्ष्मण का जीव राम के जीवरूप नहीं हो सका, ऐसा जानने से कर्ताबुद्धि का नाश होता है।

---

१. आलापपद्धति, गुणाधिकार सूत्र-६ एवं गुणव्युत्पत्ति अधिकार सूत्र-६६। समयसार आत्मख्याति टीका में समागत १७वीं शक्ति।

अगुरुलघुत्व गुण

८८.

जिस शक्ति से द्रव्य का; रहता द्रव्य-स्वरूप।
अन्य रूप होता नहीं; रहता अपने रूप।।१६१।।

गुण नहिं होवे अन्य गुण; रहे स्वयं के रूप।
रहता है हर द्रव्य में; गुण का अपना रूप।।१६२।।

द्रव्य में रहें अनन्त गुण; अलग-अलग नहीं होय।
अगुरुलघुत्व के कारणे; अपनापन नहीं खोय।।१६३।।

८९.

अर्थ कहा 'अ' का नहीं; 'गुरु' का बड़ा प्रमाण।
'लघु' का छोटा जानिये; जिससे द्रव्य समान।।१६४।।

९०.

द्रव्य, गुण, पर्याय का; है स्वतंत्र जो रूप।
'अगुरुलघु' माने बिना; नहीं रहे सद्रूप।।१६५।।

अगुरुलघुत्व गुण को जानने से लाभ

९१.

१. द्रव्य, गुण, पर्याय त्रय; सभी सदा निरपेक्ष।
सत्य अहेतुक हैं सभी; कभी नहीं सापेक्ष।।१६६।।

२. द्रव्य, क्षेत्र हर वस्तु का; भिन्न काल अरु भाव।
हैं स्वतंत्र निज कार्य को; पर सम्बन्ध अभाव।।१६७।।

३. एक द्रव्य पर-रूप नहीं; ऐसा होवे ज्ञान।
कर्ता, कर्म कुबुद्धि का; होता है अवसान।।१६८।।

४. जीव कभी पुद्गल नहीं; नहीं पुद्गल हो जीव।
एक जीव भी अन्य नहीं; रहे जीव का जीव।।१६९।।

५. प्रत्येक गुण की पर्याय अर्थात् कार्य, भिन्न-भिन्न ही होने से एक ही द्रव्य में रहने वाले एक गुण की पर्याय, उसी द्रव्य में रहने वाले अन्य गुण की पर्याय से कथंचित् पूर्ण स्वतंत्र ही है; ऐसा निर्णय होता है।

६-७. श्रद्धा गुण की पर्याय क्षायिक सम्यक्त्वरूप (सिद्ध भगवान के सम्यक्त्व समान) पूर्ण निर्मल होने पर भी साधक के ज्ञान और चारित्र गुण की पर्यायें अपूर्ण विकसित रहती हैं। इसी कारण से श्रावक एवं साधु के अनेक गुणस्थान होते हैं; यह विषय हमें अगुरुलघुत्व गुण से ही स्पष्ट होता है।

८. श्रद्धा की पर्याय चौथे गुणस्थान में, ज्ञान की पर्याय तेरहवें गुणस्थान में एवं चारित्र की पर्याय सिद्ध अवस्था में पूर्ण निर्मल होती है; ऐसा पक्का ज्ञान होता है।

९. भावलिंगी मुनिराज भूमिका के योग्य क्रोधादि कषायरूप परिणत होते हुए भी उनका भावलिंगपना सुरक्षित रहता है और श्रावक पूजादि शुभ कार्य करते समय अथवा युद्धादि अशुभ कार्य करते समय भी उसका साधकपना बना रहता है; यह विषय समझ में आता है।

१०. द्रव्य अर्थात् वस्तु और गुणों का द्रव्य, क्षेत्र, एवं काल एक ही होने से द्रव्य में से गुण बिखरकर अलग-अलग नहीं होते। **जैसे**- पीपे में भरे हुए गेहूं पीपे में से बिखरकर अलग हो जाते हैं; वैसे जीव द्रव्य में से ज्ञानादि गुण, अथवा पद्गल में से स्पर्शादि गुण बिखरकर अलग-अलग नहीं होते हैं।

११. जीव-पुद्गलादि द्रव्य में ज्ञानादि या स्पर्शादि गुण जितने और जैसे हैं, वे उतने और वैसे के वैसे ही बने रहते हैं; न हीनाधिक होते हैं और न उनका अभाव होता है।

प्रदेशत्व गुण

९२. **प्रश्न** : प्रदेशत्व गुण किसे कहते हैं?

उत्तर : जिस शक्ति के कारण द्रव्य का कोई न कोई आकार अवश्य रहता है, उसे प्रदेशत्व गुण कहते हैं।[१] **जैसे**- जीव के शरीरप्रमाण नर-नारकादिरूप आकार अथवा सिद्धरूप आकार।

---

१. आलापपद्धति, गुणाधिकार सूत्र-६ एवं गुणव्युत्पत्ति अधिकार सूत्र-१००।

५. हर गुण की पर्याय भी; भिन्न-भिन्न नहीं एक।
अन्य गुणों की हो सके; कैसे मिलकर एक?।।१७०।।

६. पूर्णरूप निर्मल हुई; श्रद्धा की पर्याय।
तब भी ज्ञान-चारित्र की; पूर्ण नहीं पर्याय।।१७१।।

७. कारण ज्ञान-चारित्र के; हैं अनेक गुणथान।
श्रावक, साधु के कहे; भिन्न-भिन्न गुणथान।।१७२।।

८. श्रद्धा पूर्ण चतुर्थ में; ज्ञान तेरहवें जान।
चारित पूरण सिद्ध में; आगम से पहिचान।।१७३।।

९. भाव शुभाशुभ के समय; साधक रहता जीव।
पर्यायों की भिन्नता; दिखती हमें सदीव।।१७४।।

१०. द्रव्य गुणों का एक है; द्रव्य क्षेत्र अरु काल।
अतः द्रव्य से गुण पृथक्; नहीं होते त्रिकाल।।१७५।।

११. पुद्गल के अरु जीव के; जैसे जितने भाव।
वे जैसे तैसे रहें; हीन अधिक न अभाव।।१७६।।

प्रदेशत्व गुण

९२.

(अ) जिस शक्ति से द्रव्य के; जो भी हों आकार।
प्रदेशत्व गुण का वही; समझो तुम व्यापार।।१७७।।

(ब) स्व शरीर प्रमाण ही; बने जीव आकार।
नर, नारक, तिर्यंच, सुर; सिद्धों का आकार।।१७७।।

निज शरीर प्रमाण से; बने जीव-आकार।
नर, नारक अरु देव का; सिद्धों का आकार।।१७७।।

९३. **प्रश्न** : द्रव्य का आकार सदा एक-सा रहता है या बदलता भी है?

उत्तर : संसारी जीव और पुद्गलस्कन्धों का आकार बदलता है। सिद्धजीव, पुद्गल परमाणु, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश और काल द्रव्य का आकार नहीं बदलता ।

९४. **प्रश्न** : प्रदेशत्व गुण न मानने से क्या हानि होगी?

उत्तर : प्रदेशत्व गुण न मानने से आकार न रहने के कारण द्रव्य को निराकारपने का प्रसंग आयेगा।

९५. **प्रश्न : प्रदेशत्व गुण को जानने से हमें क्या-क्या लाभ होते हैं?**

उत्तर : प्रदेशत्व गुण को जानने से हमें अनेक लाभ होते हैं—

१. जीव के छोटे-बड़े आकार से सुख-दु:ख का कोई सम्बन्ध नहीं है; ऐसा निर्णय होता है। **जैसे**- छोटा-बड़ा जीव अथवा भगवान भरत व बाहुबली।

२. प्रत्येक द्रव्य का आकार उसके प्रदेशत्व गुण के कारण से होता है। अत: हम किसी भी द्रव्य का आकार बना सकते हैं; ऐसी मिथ्या मान्यता निकल जाती है।

३. अरूपी द्रव्यों का आकार भी भिन्न-भिन्न होने से उनकी भिन्नता का निर्णय होता है। **जैसे**— धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश, काल एवं अनन्त सिद्ध भगवन्तों का आकार।

४. संसारावस्था में जीव शरीराकार होने पर भी उसका आकार अपने प्रदेशत्व गुण के कारण है, शरीर के कारण नहीं।

५. सिद्ध भगवान भी जीव द्रव्य हैं। द्रव्य होने से उनमें भी प्रदेशत्व गुण है, इसलिए वे साकार कहे जाते हैं। किन्तु पुद्गल स्कन्धों जैसा उनका आकार नहीं हैं, अत: सिद्धों को निराकार भी कहा जाता है।

६. विश्व में जितने द्रव्य हैं, उतने ही प्रदेशत्व गुण हैं। जीव द्रव्य चेतन है अत: उसका प्रदेशत्व गुण भी चेतन है। शेष अचेतन द्रव्यों के प्रदेशत्व गुण अचेतन है।

९३.

पुद्गल के स्कन्ध का; अरु संसारी जीव।
बदल रहा आकार सब; जानों सहज सदीव॥१७८॥

नहीं बदलता सिद्ध का; नहीं परमाणु जान।
धर्माधर्म आकाश का; काल सहित पहिचान॥१७९॥

९४.

प्रदेशत्व माने नहीं; नहीं बने आकार।
सभी द्रव्य बन जायेंगे; निराकार आकार॥१८०॥

प्रदेशत्व गुण को जानने से लाभ

९५.

१. लघु-गुरु के आकार से; दुख-सुख कभी न होय।
निर्णय हम को हो रहा; भरत-बाहुबलि जोय॥१८१॥

२. सब द्रव्यों का बन रहा; जैसा जो आकार।
कारण है प्रदेशत्व ही; जानों सुधी विचार॥१८२॥

३. द्रव्य अरूपी भी रखें; भिन्न-भिन्न आकार।
अत: भिन्नता भासती; होती है साकार॥१८३॥

धर्माधर्म अरु काल के; होते हैं आकार।
सिद्ध और आकाश भी; रखते हैं आकार॥१८४॥

४. कारण नहीं शरीर है; जीव शरीराकार।
कारण है प्रदेशत्व गुण; बना रहा आकार॥१८५॥

५. प्रदेशत्वगुण से सहित; जीव द्रव्य हैं सिद्ध।
रखते हैं आकार पर; निराकार प्रसिद्ध॥१८६॥

पर पुद्गल स्कन्ध-सा; नहिं उनका आकार।
उनका तो आकार है; सदा ज्ञान आकार॥१८७॥

६.१ जितने द्रव्य हैं विश्व में; उतने गुण तू जान।
चेतन गुण हैं जीव के; शेष अचेतन जान॥१८८॥

६.२ क्रियाशील द्रव्यों के प्रदेशत्व गुण सक्रिय हैं और क्रिया रहित द्रव्यों के प्रदेशत्व गुण निष्क्रिय हैं।

सात तत्त्व

९६. **प्रश्न** : तत्त्व किसे कहते है?
उत्तर : वस्तु के भाव अर्थात् स्वरूप को तत्त्व कहते हैं।[१]

९७. **प्रश्न** : प्रयोजनभूत तत्त्व किसे कहते है?
उत्तर : जिनकी सच्ची श्रद्धा और यथार्थ ज्ञान से हमारा सुख रूपी प्रयोजन सिद्ध होता है; उसे प्रयोजनभूत तत्त्व कहते हैं।

९८. **प्रश्न** : प्रयोजनभूत तत्त्व कितने हैं और कौन-कौन-से हैं?
उत्तर : प्रयोजनभूत तत्त्व सात हैं-; जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष।[२]

९९. **प्रश्न** : जीवतत्त्व किसे कहते हैं?
उत्तर : ज्ञान-दर्शनस्वभावी अर्थात् ज्ञानानंदस्वभावी आत्मा को ही जीवतत्त्व कहते हैं।[३]

१००. **प्रश्न** : जीवतत्त्व और जीवद्रव्य में क्या अन्तर है?
उत्तर : समस्त विकारी-अविकारी भावों से रहित ज्ञानानन्दस्वभावी त्रिकाली ध्रुव आत्मा ही जीवतत्त्व है और जीवद्रव्य में समस्त विकारी-अविकारी पर्यायें शामिल हैं।

१०१. **प्रश्न** : अजीवतत्त्व किसे कहते हैं?
उत्तर : ज्ञानानन्दस्वभावी आत्मा से रहित समस्त पदार्थों को अजीवतत्त्व कहते हैं। पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये सभी द्रव्य अजीवतत्त्व हैं।

---

१. सर्वार्थसिद्धि, अ.१ सूत्र-२ की टीका।

२. पंचास्तिकाय, गाथा-१०८ की दोनों संस्कृत टीकाएं । सर्वार्थसिद्धि, अ.१ सूत्र-४ की टीका। मोक्षमार्ग प्रकाशक, अध्याय-७, पृष्ठ २२४ से २३५ । समयसार एवं तत्त्वार्थ सूत्र दोनों ग्रंथ सात तत्त्वों के लिए ही समर्पित हैं।

३. समयसार आचार्य श्री जयसेनकृत टीका के अनुसार मोक्षाधिकार की अन्तिम तीन गाथाओं की टीका– बंधस्य विनाशार्थं विशेषभावनामाह के आगे का अंश। द्रव्यसंग्रह, अधिकार - २, गाथा २८ की भूमिका रूप संस्कृत टीका।

६.२ क्रियाशील सक्रिय कहे, निष्क्रिय क्रिया विहीन।
प्रदेशत्व गुण जानिये, अपने ही आधीन॥१९०॥

सात तत्त्व

९६.

तत्त्व वस्तु का भाव है; भाव वस्तु के साथ।
नहीं बदलता है कभी; रहता उसके साथ॥१९१॥

९७.

तत्त्व प्रयोजनभूत वह; जिनसे सुख की सिद्धि।
सत् श्रद्धा सत् ज्ञान से; मिल जाती शिव ऋद्धि॥१९२॥

९८.

सभी प्रयोजन-भूत हैं; जीव और अनजीव।
बन्ध, आस्रव, निर्जरा; संवर, मोक्ष सदीव॥१९३।

९९.

ज्ञानानन्द स्वभाव ही; जीव तत्त्व को जान।
वही आत्मा है कहा; निश्चय से पहिचान॥१९४॥

१००.

अविकारी भी है नहीं; नहीं विकारी भाव।
जीव तत्त्व हैं ध्रुव सदा; ज्ञानानन्द स्वभाव॥१९५॥

अविकारी पर्याय युत; सहित विकारी जान।
जीव द्रव्य कहते उसे; आगम से पहिचान॥१९६॥

१०१.

जीव तत्त्व से भिन्न सब; पाँचों द्रव्य अजीव।
पुद्गल, धर्म, अधर्म युत; नभ अरु काल सदीव॥१९७॥

> भूतार्थ नय से ज्ञात जीव, अजीव और पुण्य, पाप तथा आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष—यह नवतत्त्व सम्यक्त्व है।
>
> —*समयसार, गाथा-१३*

१०२. **प्रश्न** : आस्रवतत्त्व किसे कहते हैं?

उत्तर : आत्मा में उत्पन्न होने वाले राग-द्वेष-मोहरूप शुभाशुभ विकारी भावों को भावास्रव कहते हैं और उसके निमित्त से ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्मों का स्वयं आना; उसे द्रव्यास्रव कहते हैं।

१०३. **प्रश्न** : बन्धतत्त्व किसे कहते हैं?

उत्तर : मोह-राग-द्वेष, पुण्य-पाप आदि विभावभावों में आत्मा का रुक जाना, सो भावबंध है और उसके निमित्त से पुद्गल का स्वयं कर्मरूप बंधना; सो द्रव्यबंध है।

१०४. **प्रश्न** : पुण्य-पाप को आस्रव-बंध के साथ क्यों जोड़ा है?

उत्तर : पुण्य-पाप, आस्रव-बंध के ही अवान्तर भेद हैं। शुभ राग से पुण्य का आस्रव और बन्ध होता है और अशुभ राग, द्वेष और मोह से पाप का आस्रव और बन्ध होता है। इसीलिए पुण्य-पाप को आस्रव-बंध के साथ जोड़ा है।

१०५. **प्रश्न** : संवरतत्त्व किसे कहते हैं?

उत्तर : ज्ञानानन्दस्वभावी आत्मा के लक्ष्यरूप शुद्ध (वीतरागी) भावों से शुभाशुभ विकारी भावों का रुकना; भावसंवर है और तदनुसार नये द्रव्यकर्मों का आना स्वयं रुक जाना; द्रव्यसंवर है।

१०६. **प्रश्न** : निर्जरातत्त्व किसे कहते हैं?

उत्तर : ज्ञानानन्दस्वभावी आत्मा के लक्ष्य के बल से स्वरूपस्थिरता की वृद्धि द्वारा आंशिक शुद्धि की वृद्धि ही भावनिर्जरा है और उसका निमित्त पाकर जड़कर्मों का अंशत: खिर जाना, वह द्रव्यनिर्जरा है।

१०७. **प्रश्न** : मोक्षतत्त्व किसे कहते हैं?

उत्तर : ज्ञानानन्दस्वभावी आत्मा के लक्ष्य के बल से शुद्धि की पूर्णता (पूर्ण वीतरागता) ही भावमोक्ष है और निमित्त कारणरूप द्रव्यकर्म का सर्वथा नाश होना; वह द्रव्यमोक्ष है।

१०२.

राग-द्वेष अरु मोह युत; सर्व शुभाशुभ भाव।
भावास्रव ही जीव के; कहलाते वे भाव।।१९८।।

भावास्रव का निमित्त पा; आते हैं जो कर्म।
ज्ञानावर्णादिक सभी; द्रव्यास्रव हैं कर्म।।१९९।।

१०३.

राग-द्वेष अरु मोह के; हुए विकारी भाव।
इनमें रुकना जीव का; बन्ध तत्त्व के भाव।।२००।।

राग-द्वेष अरु मोह से; पुद्गल का जो बन्ध।
कर्म-रूप बन्धन वही; कहलाता द्रव्य-बन्ध।।२०१।।

१०४.

बन्धास्रव से जुड़ रहा; पुण्य-पाप सम्बन्ध।
शुभ करता है पुण्य का; अशुभ पाप का बन्ध।।२०२।।

१०५.

वीतरागता से रुकें; सर्व शुभाशुभ भाव।
कहें भाव संवर उसे; जब रुकते वे भाव।।२०३।।

संवर के सद्भाव से; नये कर्म नहीं आय।
कहें द्रव्य संवर उसे; आगम मांहि लखाय।।२०४।।

१०६.

शुद्धि की वृद्धि सदा; भाव निर्जरा जान।
बद्ध कर्म झर जात हैं; द्रव्य निर्जरा जान।।२०५।।

१०७.

हो शुद्धि की पूर्णता; भाव मोक्ष वह जान।
द्रव्य कर्म सब नष्ट हों; द्रव्य मोक्ष पहिचान।।२०६।।

जीव-अजीवादि तत्त्वार्थों का विपरीत अभिनिवेश (आग्रह) रहित श्रद्धान अर्थात् दृढ़विश्वास निरन्तर ही करना चाहिये, कारण कि वह श्रद्धान ही आत्मा का स्वरूप है। —*पुरुषार्थसिद्ध्युपाय, गाथा २२*

१०८. **प्रश्न** : शुद्धि के अन्य नाम कौन-कौन-से हैं?

उत्तर : शुद्धि के वीतरागता, मोक्षमार्ग, रत्नत्रय, धर्म, सुख इत्यादि अनेक नाम हैं।

१०९. **प्रश्न** : सात तत्त्वों में हेय-ज्ञेय-उपादेय का स्वरूप कैसा है; यह कारण सहित स्पष्ट करें?

उत्तर : १) सात तत्त्वों में आस्रव और बन्ध तत्त्व दु:ख के कारण व दु:खरूप होने से हेय (त्यागने योग्य) हैं।

२. अजीवतत्त्व सुख-दु:ख का कारण नहीं है; अत: मात्र ज्ञेय (जानने योग्य) हैं।

सातों तत्त्वों को भी जानना आवश्यक है। अत: सभी तत्त्व ज्ञेय भी हैं।

३. जीवतत्त्व के आश्रय से ही सुख प्रगट होता है; इसलिए जीवतत्त्व परम उपादेय (ध्येय) है।

४. संवर और निर्जरा सुख के कारण हैं, अत: एकदेश उपादेय (प्रगट करने योग्य) हैं।

५. मोक्षतत्त्व पूर्ण सुखरूप होने से सर्वथा उपादेय (प्रगट करने योग्य) है।

११०. **प्रश्न** : सात तत्त्वों में सामान्य और विशेष तत्त्व बताइए।

उत्तर : जीव और अजीव तत्त्व सामान्य हैं। आस्रवादि पाँच तत्त्व इनके ही विशेष हैं।

१११. **प्रश्न** : सातों तत्त्वों में प्रत्येक का काल बताइए?

उत्तर : १. जीव और अजीव तत्त्व अनादि-अनन्त हैं।

२. आस्रव और बंध अनादि-सान्त हैं एवं अभव्य की अपेक्षा अनादि-अनन्त हैं।

३. संवर और निर्जरातत्त्व सादि-सान्त हैं।

४. मोक्ष तत्त्व सादि-अनन्त हैं।

५. एक समय की पर्याय की अपेक्षा आस्रवादि पाँचों तत्त्व सादि-सान्त हैं।

१०८.

वीतरागता, रत्न-त्रय; हैं शुद्धि के नाम।
मोक्ष-मार्ग अरु धर्म, सुख; भी हैं उसके नाम।।२०७।।

१०९.

१. सात तत्त्व में हेय हैं; आस्रव बन्ध सुजान।
दुख-कारण दुख रूप ही; है उनकी पहिचान।।२०८।।

२. सुख-दुख का कारण नहीं; है अजीव भी ज्ञेय।
है आवश्यक जानना, शेष तत्त्व भी ज्ञेय।।२०९।।

३. आश्रय हो जब 'जीव' का; सहज प्रगट सुख होय।
उपादेयता जीव की; मानो सब भ्रम खोय।।२१०।।

४. संवर, निर्जर तत्त्व को; सुख के कारण जान।
उपादेयता देश इक; उनकी लो पहिचान।।२११।।

५. मोक्ष तत्त्व में पूर्ण सुख; रहे सदा सुख रूप।
उपादेय है सर्वथा; जानो उसका रूप।।२१२।।

११०.

जीव, अजीव सामान्य हैं; अन्य रहे जो शेष।
आस्रव आदि पाँच को; जानो सदा विशेष।।२१३।।

१११.

१. जीवाजीव अनादि हैं; रहें अनन्ते काल।
अनादि सान्त है बन्ध का; अरु आस्रव का काल।।२१४।।

२. सादि-सान्त संवर कहा; वैसा निर्जर जान।
सादि-अनन्ता मोक्ष है; आगम से पहिचान।।२१५।।

३. एक समय का परिणमन; आस्रव आदि तत्त्व।
सादि-सान्त कहलायेंगे, यह पाँचों ही तत्त्व।।२१६।।

यह आत्मा कर्मकृत रागादि अथवा शरीरादि भावों से संयुक्त न होने पर भी अज्ञानी जीवों को संयुक्त जैसा प्रतिभासित होता है और वह प्रतिभास ही निश्चय से संसार का बीजरूप है। —*पुरुषार्थसिद्ध्युपाय, गाथा १४*

अहिंसा

अहिंसा का महत्व न केवल जैनधर्म में; बल्कि लगभग सभी धर्मों में स्वीकार किया गया है। विश्व शांति के लिए सभी लोग अहिंसा का महत्व स्वीकार करते हैं। यद्यपि सभी धर्मों में अहिंसा की व्याख्या की गई है; परन्तु जैनधर्म में अहिंसा का अत्यन्त व्यापक एवं सूक्ष्म चिन्तन किया गया है।

आचार्य अमृतचंद्र ने अहिंसा की परिभाषा लिखते हुए कहा है-

"आत्मा में मोह-राग-द्वेष भावों की उत्पत्ति होना हिंसा है, तथा इनका उत्पन्न न होना ही अहिंसा है; यही जिनागम का सार है।"[१]

अहिंसा का स्वरूप समझने के लिए हिंसा के स्वरूप पर गहराई से विचार करना आवश्यक है।

हिंसा दो प्रकार की होती है— १- भावहिंसा २- द्रव्यहिंसा।[२]

आत्मा में उत्पन्न होने वाले मोह-राग-द्वेष आदि भावों को भावहिंसा कहते हैं तथा उनके निमित्त से पर जीवों को मारना-सताना तथा उन्हें दु:ख पहुँचाना आदि क्रियाओं को द्रव्यहिंसा कहते हैं। हिंसादि पाँच पापों में हिंसा को ही सर्वाधिक बड़ा पाप कहा जाता है। अतः हमें यथाशक्ति हिंसा से बचने का प्रयत्न करना चाहिए।

आत्मा के शुद्धोपयोगरूप परिणामों के घात होने के कारण यह सब हिंसा ही है। असत्य वचनादिक के भेद केवल शिष्यों को समझाने के लिए उदाहरणरूप कहे गये हैं।

—पुरुषार्थसिद्ध्युपाय, गाथा ४२ का अर्थ

१. पुरुषार्थसिद्ध्युपाय श्लोक ४४। २. पुरुषार्थसिद्ध्युपाय श्लोक ५१-५८।

अहिंसा

१

जैन धर्म की अहिंसा; विश्व-शांति का मूल।
स्वीकारा है जगत ने; कोई नहीं प्रतिकूल।।२१७।।

२

सब धर्मों में अहिंसा; पाती है सम्मान।
जैन धर्म की अहिंसा; उससे कही महान।।२१८।।

३

मोह, राग अरु द्वेष के; भाव हुए उत्पन्न।
तब ही हिंसा हो गई; सहज रूप सम्पन्न।।२१९।।

४

राग-द्वेष अरु मोह का; जहाँ नहीं व्यापार।
हिंसा वहाँ होती नहीं; कहा जिनागम सार।।२२०।।

५

हिंसा दो प्रकार की; द्रव्य-भाव से जान।
उनके सत्य-स्वरूप को; आगम से पहिचान।।२२१।।

६

मोह, राग अरु द्वेष से; हो जाते जो भाव।
वही 'भाव-हिंसा' कही; जानो उसका भाव।।२२२।।

७

इन परिणामों से जहाँ; पर-प्राणों का घात।
कही 'द्रव्य-हिंसा' वहाँ; है आगम की बात।।२२३।।

८

सब पापों में है बड़ा; हिंसा का ही पाप।
उससे बचना चाहिये; तभी मिटे सन्ताप।।२२४।।

> कारण कि जीव कषायभाव से युक्त होने से प्रथम अपने से ही अपने को घात करता है और पीछे भले ही दूसरे जीवों की हिंसा हो अथवा न हो। ***—पुरुषार्थसिद्ध्युपाय, गाथा ४७ का अर्थ***

हिंसा के भेद

११२. **प्रश्न** : क्या गृहस्थ जीवन में हिंसा का सर्वथा त्याग करना संभव है?

उत्तर : गृहस्थ जीवन में आरम्भी, उद्योगी एवं विरोधी हिंसा का त्याग नहीं हो सकता; फिर भी संकल्पी हिंसा का त्याग तो किया ही जा सकता है। प्रत्येक जैन को संकल्पी हिंसा का त्यागी होना ही चाहिए।[१]

११३. **प्रश्न** : संकल्पी हिंसा किसे कहते हैं?

उत्तर : केवल निर्दय परिणाम ही हैं हेतु जिसमें, ऐसे संकल्प (इरादा) पूर्वक किया गया प्राणघात ही संकल्पी हिंसा है। **जैसे**-खटमल, मच्छर, बिच्छू आदि जीवों को मारना।

११४. **प्रश्न** : उद्योगी हिंसा किसे कहते हैं?

उत्तर : व्यापारादि कार्यों में सावधानी वर्तते हुए भी जो हिंसा होती है; उसे उद्योगी हिंसा कहते हैं। **जैसे**— खेत में हल चलाते समय होने वाली हिंसा आदि।

११५. **प्रश्न** : आरम्भी हिंसा किसे कहते हैं?

उत्तर : रसोई बनाना, झाडू लगाना आदि घर के कार्यों में सावधानी वर्तते हुए भी जो हिंसा हो जाती है; वह आरम्भी हिंसा है।

११६. **प्रश्न** : विरोधी हिंसा किसे कहते हैं?

उत्तर : अपने तथा अपने परिवार एवं धर्मायतन आदि पर किये गये आक्रमण से रक्षा के लिए अनिच्छापूर्वक की गई हिंसा, विरोधी हिंसा है।

११७. **प्रश्न** : उक्त चारों प्रकार की हिंसा का त्याग कौन कर सकता है?

उत्तर : मुनिराज ही उक्त चारों प्रकार की हिंसा के त्यागी होते हैं। ऐसे मुनिराज एवं वीतरागी-सर्वज्ञ भगवान ही हमारे आदर्श हैं। जिनके जीवन में अंशमात्र भी हिंसा हो; वे हमारे आदर्श नहीं हो सकते।

---

१. रत्नकरण्ड श्रावकाचार, अधिकार ३, श्लोक-५३ की पं. सदासुखदासजी की टीका।

हिंसा के भेद

११२.

हिंसा आरम्भी तथा; उद्योगी भी जान।
और विरोधी को नहीं; त्याग सके गृहवान॥२२५॥

कर सकता है गृहस्थ तो; संकल्पी का त्याग।
जैन धरम को मान्य है; गृहस्थी-जन का त्याग॥२२६॥

संकल्पी के त्याग बिन; नहीं कहावे जैन?।
संकल्पी हिंसा तजो; बन जाओ सब जैन॥२२७॥

११३.

निर्दय हो संकल्प से; किया प्राण का घात।
संकल्पी हिंसा वही; है आगम की बात॥२२८॥

खटमल मच्छर मारना; है हिंसा संकल्प।
संकल्पी सब छोड़िये; जितने बने विकल्प॥२२९॥

११४.

यत्न सहित व्यापार में; होती हिंसा जान।
उद्योगी हिंसा वही; निश्चय से पहिचान॥२३०॥

११५.

यत्न सहित गृहकार्य में; होती हिंसा जान।
आरम्भी हिंसा वही; आगम से पहिचान॥२३१॥

११६.

अपने या परिवार की; रक्षा के हित मान।
बिन इच्छा से हो गई; वही विरोधी जान॥२३२॥

जिनमन्दिर जिनधर्म अरु; जिनवाणी हित मान।
रक्षा हित हिंसा हुई; वही विरोधी जान॥२३३॥

११७.

चारों हिंसा रहित मुनि; और सभी जिनराज।
रहें सदा आदर्श वे; धन्य धन्य मुनिराज॥२३४॥

देव-शास्त्र-गुरु

११८. प्रश्न : सच्चे देव किन्हें कहते हैं और वह कौन-कौन हैं?

उत्तर : जो वीतरागी, सर्वज्ञ और हितोपदेशी हैं; उन्हें सच्चे देव कहते हैं। अरहंत और सिद्ध परमेष्ठी ही सच्चे देव हैं, ऐसा पक्का श्रद्धान करना चाहिये; इनके अतिरिक्त अन्य कोई सच्चे देव नहीं हैं।

११९. प्रश्न : सच्चे शास्त्र किन्हें कहते हैं?

उत्तर : जो वीतराग और सर्वज्ञ भगवान द्वारा कहा हुआ हो, किसी वादी-प्रतिवादी से अनुलंघ्य हो। प्रत्यक्ष और अनुमान ज्ञान से जिसमें विरोध न हो। जो यथार्थ वस्तु-स्वरूप का प्रतिपादक हो तथा समस्त जीवों का हितकारक हो एवं मिथ्यामार्ग का निषेधक हो; उन्हें सच्चे शास्त्र कहते हैं।

१२०. प्रश्न : सच्चे गुरु किन्हें कहते हैं, वे कौन-कौन हैं?

उत्तर : जिस आरम्भ से जीवों का घात होता हो, —ऐसे आरम्भ से जो रहित हों, पंचेन्द्री के विषयों से रहित हों, जिन्हें नाम मात्र का भी परिग्रह न हो और जो ज्ञान-ध्यान में लीन रहते हों, वही सच्चे गुरु कहलाते हैं। आचार्य, उपाध्याय और साधु परमेष्ठी ही सच्चे गुरु हैं।

१२१. प्रश्न : श्रावक किन्हें कहते हैं, उनके कितने भेद हैं और वे कौन-कौन हैं?

उत्तर : जो सच्चे देव-शास्त्र-गुरु का श्रद्धानी हो; मद्य, मांस मधु और पंच उदम्बर फलों का त्यागी हो अर्थात् अष्ट मूलगुणों का धारक हो; सप्त व्यसन का त्यागी हो; देवदर्शन, स्वाध्याय, पूजन एवं दान में प्रवृत्त हो; अन्याय अनीति और अभक्ष-भक्षण से रहित हो; पानी छानकर पीता हो और यथाशक्ति अणुव्रतादि का पालन करता हो; उसे श्रावक कहते हैं। श्रावक के तीन भेद हैं— पाक्षिक, नैष्ठिक, और साधक।

> अरहंत देवादिक का श्रद्धान करना; क्योंकि यह श्रद्धान होने पर गृहीतमिथ्यात्व का तो अभाव होता है तथा मोक्षमार्ग के विघ्न करनेवाले कुदेवादि का निमित्त दूर होता है। मोक्षमार्ग के सहायक अरहंत देवादिक का निमित्त मिलता है। — ***मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ ३२८***

देव-शास्त्र-गुरु

११८.

वीतराग सर्वज्ञ अरु; हित उपदेशी जान।
आगम के आलोक में; सच्चे देव महान॥२३५॥
अरहंत सिद्ध परमेष्ठी; ही हैं सच्चे देव।
उनका दृढ़ श्रद्धान कर; अन्य नहीं हैं देव॥२३६॥

११९.

वीतराग सर्वज्ञ के; कथित मात्र हैं शास्त्र।
वादी-प्रतिवादी जिन्हें; लांघ सकें क्या शास्त्र॥२३७॥
प्रत्यक्ष और अनुमान से; जिसमें नहीं विरोध।
वस्तु तत्त्व का सहज ही; जिससे होता बोध॥२३८॥
हितकारक सब जीव को; मिथ्या-मग से दूर।
शास्त्र वही पहचानिये; ज्ञान-कला भरपूर॥२३९॥

१२०.

जीव घात आरम्भ से; अक्ष विषय से हीन।
नहीं परिग्रह रंच भी; ज्ञान-ध्यान में लीन ॥२४०॥
सच्चे गुरु ही हैं वही; वही सच्चे साधु।
तीन नाम आचार्य अरु; उपाध्याय सब साधु॥२४१॥

१२१.

मद्य, मांस, मधु के सहित; पंच उदम्बर त्याग।
अष्ट मूलगुण धारते; सप्त व्यसन का त्याग॥२४२॥
नित दर्शन जिनदेव का; स्वाध्याय में लीन।
पूजन अर्चन देव की; करते दान प्रवीण॥२४३॥
न्याय-नीति पर ही चलें; है अभक्ष का त्याग।
पानी का उपयोग भी; छान करें बडभाग॥२४४॥
निशि भोजन सब छोड़ते; यथाशक्ति व्रत लीन ।
इन सबका पालन करें; श्रावक वही प्रवीण ॥२४५॥
श्रावक के त्रय भेद हैं; पाक्षिक, नैष्ठिक जान ।
साधक भी श्रावक सभी; आगम से पहिचान ॥२४६॥

परिशिष्ट

प्रश्न : सामान्य व विशेष गुणों में किस अपेक्षा से अन्तर है?

उत्तर : सामान्य व विशेष गुणों में निम्न चार प्रकार से अन्तर है —

१. सामान्य गुण सर्व द्रव्यों में रहते हैं, परन्तु विशेष गुण अपनी-अपनी जाति के द्रव्यों में ही रहते हैं।

२. सामान्य गुण से द्रव्य की सिद्धि होती है और विशेष गुण से उनमें जाति भेद सिद्ध होता है।

३. यदि सामान्य गुण न हों तो द्रव्य ही न हो और यदि विशेष गुण न हों तो सर्व द्रव्य मिलकर एकमेक हो जायें।

४. सामान्य गुण, द्रव्य सामान्य का लक्षण बनाने के काम आते हैं और विशेष गुण पृथक्-पृथक् द्रव्यों के लक्षण बनाने के काम आते हैं। **जैसे**— द्रव्य का लक्षण तो अस्तित्व है; परन्तु जीव द्रव्य का लक्षण ज्ञान-दर्शन है।

प्रश्न : सामान्य व विशेष गुणों में कौन अधिक हैं?

उत्तर : दोनों अनंत-अनंत हैं, कोई अधिक नहीं, कोई कम नहीं।

प्रश्न : सामान्य व विशेष गुणों में संज्ञा-संख्या आदि आठ अपेक्षाओं से भेदाभेद दर्शाओ।

उत्तर : १. **'संज्ञा'** अपेक्षा भेद है; क्योंकि दोनों के नाम भिन्न-भिन्न हैं।

२. **'संख्या'** अपेक्षा अभेद है; क्योंकि दोनों अनंत-अनंत हैं।

३. **'लक्षण'** अपेक्षा भेद है; क्योंकि दोनों के लक्षण भिन्न-भिन्न हैं।

४. **'प्रयोजन'** अपेक्षा भेद है; क्योंकि सामान्य गुण से द्रव्य की सिद्धि होती है और विशेष गुण से जाति की सिद्धि होती है।

५. **'द्रव्य'** अपेक्षा अभेद है; क्योंकि दोनों का आश्रय प्रत्येक द्रव्य है।

६. **'क्षेत्र'** अपेक्षा अभेद है; क्योंकि दोनों ही उस द्रव्य के सर्व भाग में रहते हैं।

७. **'काल'** अपेक्षा अभेद है; क्योंकि दोनों द्रव्य की सर्व अवस्थाओं में रहते हैं अर्थात् त्रिकाली हैं।

८. **'भाव'** की अपेक्षा भेद है; क्योंकि दोनों के लक्षण भिन्न हैं।

प्रश्न : छहों सामान्य गुणों के क्रम का सार्थक्य दर्शाओ।

उत्तर : अस्तित्वादि छह सामान्य गुणों के क्रम का सार्थक्य इसप्रकार है—

१. **'अस्तित्व गुण'** — किसी पदार्थ का अस्तित्व होने पर ही अन्य-अन्य बातों की चर्चा प्रयोजनीय है, इसलिये 'अस्तित्व गुण' सबसे पहिले है।

२. **'वस्तुत्व गुण'** — जो भी है उसका कुछ न कुछ प्रयोजनभूत कार्य अवश्य होना चाहिए, अन्यथा वह वस्तु ही नहीं है। इसलिये दूसरे स्थान पर 'वस्तुत्व' है।

३. **'द्रव्यत्व गुण'** — वस्तु में प्रयोजनभूत कार्य सम्भव नहीं जब तक कि उसमें परिणमन न हो, इसलिये तीसरे स्थान पर 'द्रव्यत्व' गुण है।

४. **'प्रमेयत्व गुण'**— उपरोक्त तीनों बातों की सिद्धि तभी हो सकती है, जब वह किसी न किसी के ज्ञान का विषय बन रहा हो। इसलिये चौथे स्थान पर 'प्रमेयत्व' है।

५. **'अगुरुलघुत्व गुण'** — परिणमन करते हुए अपने स्वतंत्र अस्तित्व की रक्षा अवश्य करनी चाहिए, ताकि बदलकर दूसरे रूप न हो जाये; अन्यथा सभी द्रव्य मिल जुलकर एकमेक हो जायेंगे। इसी से पाँचवें स्थान पर 'अगुरुलघुत्व' गुण कहा गया है।

६. **'प्रदेशत्व गुण'** — द्रव्य की स्वतंत्र सत्ता टिक नहीं सकती यदि गुणों का समूह न हो; और गुणों का समूह रह नहीं सकता जब तक कि उनका कोई आधार या आश्रय न हो। आश्रय प्रदेशवान ही होता है; इसलिये अन्त में 'प्रदेशत्व' गुण कहा गया है।

प्रश्न : अपने में छहों सामान्य व विशेष गुण घटित करके दिखाओ।

उत्तर : मैं हूँ, यह मेरा अस्तित्व है। जानना-देखना मेरा प्रयोजनभूत कार्य है, यही मेरा वस्तुत्व है। मैं प्रति क्षण बालक से वृद्धत्व की ओर जा रहा हूँ या मेरे ज्ञानादि गुणों की अवस्थाएँ बदलती हैं, यह मेरा द्रव्यत्व है। मुझको मैं व आप सब जानते हैं, यह मेरा प्रमेयत्व है। मैं कभी भी बदल कर चेतन से जड़ नहीं बन सकता, यही मेरा अगुरुलघुत्व है। मैं मनुष्य की आकृति या संस्थान वाला हूँ, यह मेरा प्रदेशत्व है। ज्ञान-दर्शन आदि मेरे विशेष गुण हैं, यह सर्व प्रत्यक्ष हैं।

सर्वज्ञदेव कथित छहों द्रव्यों की स्वतंत्रादर्शक

छह सामान्य गुण

कर्ता जगत का मानता जो, 'कर्म या भगवान को'।
वह भूलता है लोक में, अस्तित्व गुण के ज्ञान को।।
उत्पादव्ययुत वस्तु है, फिर भी सदा ध्रुवता धरे।
अस्तित्व गुण के योग से, कोई नहीं जग में मरे।।१।।

वस्तुत्व गुण के योग से हो, द्रव्य में स्व-स्वक्रिया।
स्वाधीन गुण-पर्याय का ही, पान द्रव्यों ने किया।।
सामान्य और विशेष से, कर रहे निज-निज काम को।
यों जानकर वस्तुत्व को, पाओ विमल शिवधाम को।।२।।

द्रव्यत्व गुण इस वस्तु को, जग में पलटता है सदा।
लेकिन कभी भी द्रव्य तो, तजता न लक्षण संपदा।।
स्व-द्रव्य में मोक्षार्थी हो, स्वाधीन सुख लो सर्वदा।
हो नाश जिससे आज तक की, दुःखदायी भव कथा।।३।।

सब द्रव्य-गुण प्रमेय से, बनते विषय हैं ज्ञान के।
रुकता न सम्यग्ज्ञान पर से, जानियो यों ध्यान से।।
आत्मा अरूपी ज्ञेय निज यह, ज्ञान उसको जानता।
है स्व-पर सत्ता विश्व में, सुदृष्टि उनको जानता।।४।।

यह गुण अगुरुलघु भी सदा, रखता महत्ता है महा।
गुण-द्रव्य को पररूप यह, होने न देता है अहा।।
निज गुण-पर्याय सर्व ही, रहते सतत निज भाव में।
कर्ता न हर्ता अन्य कोई, यों लखो स्व-स्वभाव में।।५।।

प्रदेशत्व गुण की शक्ति से, आकार द्रव्यों का धरे।
निज क्षेत्र में व्यापक रहे, आकार भी स्वाधीन है।।
आकार हैं सब के अलग, हो लीन अपने ज्ञान में।
जानो इन्हें सामान्य गुण, रक्खो सदा श्रद्धान में।।६।।